अदृश्य शक्ति

(THE UNSEEN POWER)

मो० क० गाँधी

संपादक—जगपरवेशचन्द्र

अनुवादक—लक्ष्मी नारायण राजावत

—प्रकाशक :—

इण्डियन प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,

७ ए/२३ डब्ल्यु० ई० ए० करौल बाग, नई दिल्ली।
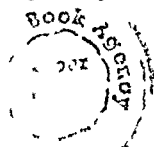
मुल्य २)

'अदृश्य शक्ति' पर कुछ समालोचकों की बहुमूल्य सम्मतियां:—

इस में अनन्त बुद्धिमत्ता भरी पड़ी है जिसका अनुपम गांधीजी की शैली से स्पष्टी करण किया गया है। —'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट'

जगप्रवेशचन्द्र ने धीरता से जो श्रम और खोज की है उसके फल स्वरूप एक ऐसी पुस्तक का निर्माण हुआ जो प्रत्येक स्वाध्यायप्रेमी और प्रत्येक भारतवासी के लिये एक बहुमूल्य सम्पत्ति है। —'दि ट्रिब्यून

इसका एक एक शब्द पढा जाना चाहिये, दुहराया जाना चाहिये, मनन किया जाना चाहिये, क्योंकि उनके द्वारा सचाई की राह और चिंता तथा कष्टों से मुक्ति पाने का मार्ग प्राप्त होता है। —'दि सर्च लाइट'

इस ग्रंथ में वर्तमान युग के ऊंचे ऊंचे विचार खूब ठूस ठूस कर भरे हुये हैं। —'सन मिलोन

इस में ईश्वर, प्रार्थना और मूर्ति-पूजा के विषय में गांधीजी के विचार संगृहीत हैं। —'ह उस्मी

इसके द्वारा गांधीजी के जो विचार ईश्वर, धर्म और प्रार्थना के विषय में हैं, उनका रहस्य ज्ञान होता है। —'इलस्ट्रेटेड वीकली

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। —'स्टे टाइम्स'

यह एक महापुरुष का महान ग्रंथ है और अपने मूल्य को पूर्णतया चुकाता है। —'संडे स्टैन्डर्ड'

जिन लोगों को धर्म से प्रेम है उन सभी के हार्दिक धन्यवाद श्री जगपरवेशचन्द्र पाने के अधिकारी हैं। —'टाइम्स आफ आसाम

इस ग्रन्थ में प्रकाश से भरे हुए अनेक विचार मिलेंगे।

—रंगून डेली न्यूज'

इस पुस्तक को वे लोग अधिक रुचि से पढेंगे जिन्हें गांधीजी की राजनीतिक विचार धारा की अपेक्षा आध्यात्मिक आदर्शों से अधिक प्रेम है। —'सिलोन आब्जर्वर'

इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति पर पहुँचाने वाले उच्च विषयों की भरमार है। —इण्डियन एक्सप्रेस'

प्रकाशक का निवेदन

बीसवीं शताब्दी के सब से बड़े महापुरुष महात्मा गान्धी की सर्वाधिक लोक प्रिय पुस्तक " अदृश्य शक्ति " (Unseen Power) है। हमने अंग्रेजी में इस पुस्तक की चार आवृत्तियां प्रकाशित कीं और दूसरी आवृत्ति के छपने से पूर्व ही पहले की आवृत्ति बिक जाती रही। जनता की निरन्तर मांग और आग्रह पर प्रथमबार यह पुस्तक हिन्दी पढ़ने वाले पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुए हमें हर्ष होता है।

इन आर्थिक संकट के दिनों में यह पुस्तक हम सब की सच्ची सहायक हो सकती है; क्यों कि हम अपनी कठिनाइयों को, अपना सम्पूर्ण विश्वास परमात्मा—अदृश्य महाशक्ति पर रख कर ही दूर कर सकते हैं जैसे महात्मा गान्धी ने स्वयं समझा और जनता को समझाया है।

विषय सूची

भाग प्रथम

भाग द्वितीय

भाग तृतीय

मुद्रक तथा प्रकाशक—
श्री नारायण दास कुमार
इण्डियन प्रिण्टिङ्ग वर्क्स ७ ए/२३ डब्ल्यू० ई० ए०
करौल बाग, नई दिल्ली।

प्रस्तावना

संसार के आरम्भ से ही मनुष्य के मन को इस वात को जानने की उत्सुकता है कि वास्तव मे ईश्वर है अथवा नही और यदि है तो वह कौन है और कहा है। समय समय पर ऐसे वडे वडे ऋषि-मुनि उत्पन्न होते आये है, जिन्होंने हमे सचाई की राह दिखलाई है, और हमारे सम्मुख अपने व्यक्तिगत अनुभवों को उपस्थित किया है। महात्मा गाधी उनमे से एक है, और क्योंकि वे हमारे है और हमारे समकालीन है इस लिये उनके शब्द ऐसे है, जिनका प्रभाव हमारे जीवन पर गहरा पडता है और जो हमे सही मार्ग दिखलाते है।

गांधीजी की सव से वडी शक्ति है—उनका ईश्वर मे अतुल विश्वास। वे हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता के लिये लड रहे है, क्योंकि उन की धारणा है कि ईश्वर की प्रजा की सेवा से ही ईश्वर की सर्वोत्तम सेवा हो सकती है। उनके हृदय मे हिन्दुस्थान के लिये सच्चा प्रेम है, क्योंकि वह उनकी मातृ-भूमि है। परन्तु उनकी देशभक्ति का क्षेत्र संकुचित नहीं है, क्योंकि उनके सिद्धान्त और विचार तो सारे ससार से प्रेम रखने के है। सवाददाताओ और दर्शनार्थियों को वे अवसर देते है, जिस मे वे उनसे सीधे और जटिल प्रश्न पूछते है। वे लोग उनसे इस विषय का निश्चित प्रमाण मागते है कि ईश्वर है या नहीं और उसकी आवश्यकता भी है या नहीं, और वे लोग उनसे युक्ति और तर्क के आधार पर ईश्वरीय विश्वास पाना चाहते है। गाधीजी स्वीकार करते है कि मेरा विश्वास युक्तियों से ऊपर है। मै ईश्वर मे अपने मन के द्वारा नहीं परन्तु हृदय से विश्वास रखता हूँ। उनका कहना है कि मै बिना वायु और पानी के

रह सकता हूं परन्तु ईश्वर के विना नहीं। चाहे तुम मेरी आंखों को निकाल डालो, परन्तु इस से मेरा प्राणान्त न होगा। तुम मेरी नाक भी चाहे काट डालो, फिर भी मैं नहीं मरूंगा। परन्तु मेरा जो ईश्वर में विश्वास है उसको यदि तोड दोगे तो मेरी मृत्यु हो जायगी।

इन अवतरणों मे जो 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' से लिये हुए हैं गांधीजी ने उन प्रश्नों के उत्तर दिये हैं जो उनके सामने सीधे और मनुष्य रूप मे रखे गये।

यह पुस्तक तीन भागों में बटी हुई है। पहले भाग में ईश्वर के अस्तित्व का वर्णन है, दूसरे मे प्रार्थना का अर्थ बतलाया है और तीसरे में मूर्ति-पूजा का वर्णन है; और प्रत्येक भाग को पृथक् पृथक् अध्यायों में तर्क दृष्टि से बांटा गया है।

प्रथम भाग

अध्याय १

भूल करने वाला मनुष्य

मैंने कागज का एक कटा हुआ टुकडा पाया है जिसमे बताया गया है कि मैं ईश्वर का दूत हू, और मुझ से पूछा गया है कि क्या आपका इस बात का दावा है कि ईश्वर से आपको कोई प्रत्यक्ष सन्देश प्राप्त हुआ है। इसके उत्तर में मुझे यह कहना है कि जो अन्तिम आरोप मुझ पर मढा गया है, उसे मै स्वीकार नहीं करता। मैं प्रत्येक अच्छे हिन्दू के समान प्रार्थना करता हू। मेरा विश्वास है कि हम सभी ईश्वर के दूत बन सकते हैं। यदि हम मनुष्य से डरना छोड़ दें और केवल ईश्वरीय सचाई की खोज करने लगें। मेरा यह विश्वास है कि मै एकमात्र ईश्वरीय सचाई की खोज मे हू और मैंने मनुष्यों से डरना सर्वथा छोड़ दिया है। इस लिये मुझे प्रतीत होता है कि ईश्वर असहयोग आन्दोलन के साथ है। मुझे ईश्वर की इच्छा के सबन्ध मे कोई प्रत्यक्ष प्रेरणा नहीं मिली है। मुझे दृढ विश्वास है कि ईश्वर प्रतिदिन मनुष्यमात्र को दर्शन देता है, परन्तु हम अपने कानों को उसके अत्यन्त मन्द शब्द सुनने के लिये बन्द रखते है। हम अपनी आंखों के समक्ष जो आग का स्तम्भ है उसे भी नहीं देखते। मै ईश्वर की सत्ता का अनुभव करता हू। वैसा ही लेखक स्वय भी कर सकता है।

—यग इण्डिया मई २५,१६२१ ई०

.3५6

एक बुरी तुलना

एक रोमन केथालिक सवाददाता जो हिन्दुस्तानी केथालिक संस्था का मंत्री है एक लम्बा पत्र लिखता है, जिसका कुछ अश मै नीचे लिखता हूँ।

"मैंने बहुधा राष्ट्रीय समाचार पत्रों मे बडे बडे अक्षरों मे लिखे हुए शीर्षकों के नीचे प्रकाशित कुछ पत्र पढे है। उनमे ईसा मसीह और आपके जीवन व कार्यों की तुलना की जाती है। इन पत्रों के लेखकों को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ परन्तु वे एक पग आगे बढ गए, उन्होंने गांधी जी को हिन्दुस्थानियों के लिये वर्तमान युग का जीजीज तक बता दिया। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि ये लोग कहां तक बढते जायगे और ये पत्र जिनकी समाचार पत्रों मे बाढ सी उठी हुई थी, आपके कारावास के समय कुछ काल के लिए बन्द रहे, किन्तु आपके जेल से लौटते ही उनका फिर से ताता सा लग गया है। मुझे जो उत्तर मिले है, वे सन्तोष जनक नहीं है। इसी लिए मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ।"

"क्या आप इस प्रकार की बढती को और भक्ति को जो कि पागलपन पर्यन्त जा पहुचती है, हर्ष के साथ अपनायेंगे? इस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं करता है कि आप अपने मार्ग के एक महापुरुष है। आपके विरोधी तक भी इस बात को स्वीकार करते है। किन्तु कुछ भी हो, आप परमात्मा तो सर्वथा नहीं है। मैंने अभी तक आपको यह दावा करते हुए नहीं पाया है कि मैं ईश्वर हूं। आप राजनीति को सिखा रहे है न कि धर्म को। इसके अतिरिक्त आपतो एक विवाहित व्यक्ति है और आपके धर्मपत्नी और पुत्र भी है। तब इन बिना सोचे-समझे प्रशसा करने वालों को यह कैसे प्रतीत होता है कि आपके तथा ईसा मसीह के जीवन और कार्यों मे समानता है? मुझे विचार हुआ कि सभवत आपके अहिंसा के सिद्धान्त ने, जिसको आप बडी उत्तमता से

आचरण मे लाते है, उन्हे इस प्रकार की तुलना करने को अवकाश दिया है। किन्तु आप एक दृढ राष्ट्रीय विचारों वाले व्यक्ति होते हुए भी राजनीतिक जीवन मे अहिंसा को सफलता का साधन बतलाते है। मसीह ने तो न केवल राजनीतिक जीवन मे भाग लेना अस्वीकार ही किया था, परन्तु उन्होंने तो सब लोगों को यह आदेश दिया था कि वे अपने पास जो कुछ भी सीजर का है वह सब उसी को दे डाले। वे तो मन, वचन और कर्म मे एक महापुरुष के समान अपना जीवन बिताते थे। उनके मन मे तो जाति और राष्ट्र की छोटी भावना थी ही नहीं। उन्होंने भी बडी उत्तमता से बताया है कि शारीरिक शक्ति को किसी सही बात के लिये उपयोग मे लाना उतना ही उचित है जितना कि उनके बतलाये हुए आत्मिक बल को लाना। यहा भी जो अभिमान पूर्ण 'समानता और तुलना' की गई है वह मेरी समझ मे नही आती है।"

"इसलिये यह एक स्वाभाविक बात हो गई है कि मैं आप से पूछूं कि आप के अपने विचार उन लेखकों के सम्बन्ध में क्या है, जिन्होंने आपके लिए ऐसा लिखा है।"

लेखक को इस तुलना से जो कष्ट हुआ है वह योग्य ही है। उनके प्रश्नों के उत्तर मे मै वही दोहराऊंगा जो मैने पहले कहा था— अर्थात् मै इन तुलनाओं को सर्वथा नही चाहता। उन से कोई लाभ नहीं होता है परन्तु जिन महात्माओं के जीवन से मेरे जीवन की तुलना की जाती है उनके भक्तों के हृदयों को व्यर्थ ठेस पहुँचती है। मेरा यह दावा नही है कि मुझ मे दूसरों की अपेक्षा कोई विशेष ईश्वरीय शक्ति अधिक है। मै अवतार होने का दावा नहीं करता हूँ। मै तो सचाई का एक तुच्छ जिज्ञासु हूँ और उसको पाने की चिन्ता मे लगा हुआ हूँ। ईश्वर साक्षात्कार के लिये मै किसी भी तरह के त्याग को भारी नहीं समझता हूँ। मेरे सभी कार्य चाहे वे राजनीतिक, सामाजिक, जन-सेवा-सम्बन्धी अथवा आध्यात्मिक क्यों न हों, केवल ईश्वर-साक्षात्कार के लिये है।

क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि ईश्वर अपनी सृष्टि के छोटे से छोटे
जवों मे अधिक प्रत्यक्ष होता है अपेक्षा ऊँचे और सशक्त जीवों के, मै
उनकी स्थिति तक पहुँचने का यथा शक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं उनकी
सेवा के बिना ऐसा नहीं कर सकता हूँ। इसी लिये जो वर्ग कुचले हुए है
उन्हीं की सेवा मे मैं व्यस्त हूँ। क्योंकि इस प्रकार की सेवा राजनीति
मे प्रवेश के बिना मैं नहीं कर सकता हूँ, मैं उसमे हूँ। इस प्रकार मैं
ईश्वर नहीं हूँ। मै तो केवल एक प्रयत्नशील भूल करने वाला और
क्षुद्र भारत का और उसके द्वारा मनुष्यता का सेवक हूँ।

हमारे देश मे तो पहले से ही बहुत अन्ध विश्वास का फैलाव है।
गाधी—पूजा को बढ़ाया नहीं जाय, परन्तु इसको रोकने का पूर्ण प्रयत्न
किया जाय। मैं गुणी की अपेक्षा गुणों की पूजा मे विश्वास रखता हूँ। मैं
स्वयं आडम्बर युक्त पूजा का विरोधी हूँ। गुणी की पूजा तो उसकी मृत्यु
के बाद ही हो सकती है। शरीर तो कुछ नहीं है। वह तो नाशवान है।
परन्तु गुण तो स्थायी रहते है—कभी एक व्यक्ति मे और कभी दूसरे
मे। बेचारे गोंड लोग मेरे विषय मे अथवा मेरे पवित्र मजार के सम्बन्ध
मे कुछ भी नहीं जानते है। मैं जानता हूँ कि मुझ मे कोई ऐसी शक्ति
नहीं है कि मैं किसी को कुछ दे सकूँ। मुझे यह जानकर भारी दुःख
हुआ है कि ऐसा झूठा प्रचार किया जाता है कि मेरी आत्मा दूसरों के
शरीर मे प्रवेश करती है। यह बात हानि और भ्रम उत्पन्न करेगी। मै
अपने सहयोगियों से निवेदन करता हूँ कि वे सवाददाताओं के लिखे
अनुसार जो झूठी पूजा आरम्भ हो चुकी है उसकी रोक करें। गोंड जैसे
सीधे-सादे लोगों मे इस प्रकार के ढोंग का फैलाव होने देना महा-पाप है।

—यंग इंडिया : सितम्बर ११, १९२४ ई०

प्रतीत होता है मेरे कुछ सवाददाताओं को ऐसा भ्रम है कि मैं
अलौकिक चमत्कार कर सकता हूँ। मुझे सत्य के पुजारी के नाते यह

स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मुझ मे ऐसी कोई योग्यता नहीं है। मुझ मे जो कुछ भी शक्ति है उसका देने वाला ईश्वर है। किन्तु वह सीधे मार्ग से नहीं देता है। वह अपने अनन्त साधनों द्वारा कार्य करता है। इस विषय मे वह कांग्रेस द्वारा कार्य कर रहा है। मुझे जो कुछ भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है वह कांग्रेस के द्वारा हुई है। कांग्रेस ने जो मान प्राप्त किया है वह अपने आदर्शों के कारण। यदि कांग्रेस के कार्यकर्ता सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को छोड दे तो कांग्रेस अपनी ख्याति को खो देगी। यदि मै कांग्रेस का यथार्थ प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता हूँ तो मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे गुण चाहे वे खरे हों या खोटे, कोई महत्व नहीं रखेंगे।

—यंग इण्डिया : अक्टूबर ८,१९२४ ई०

ईश्वर के शुभ हाथों में

मैं कौन हूँ ? मुझ मे उस शक्ति के अतिरिक्त जो ईश्वर मुझे देता है दूसरी कोई शक्ति नहीं है। सिवाय नैतिक अधिकार के दूसरा कोई अधिकार मैं अपने देश वासियों पर नहीं रखता यदि प्रभु मुझे भयानक हिंसा जो समस्त जगत पर प्रभुत्व जमाये है उसके स्थान पर अहिंसा के विस्तार के लिये उचित साधन मानता है तो वह मुझे उसके लिये सच्चा मार्ग और और सच्ची शक्ति अवश्य देगा। मूक और शान्त प्रार्थना ही मेरा सब से बडा शस्त्र है। इसलिये शक्ति का मूल ईश्वर के शुभ हाथों में ही है। कोई भी कार्य उसकी इच्छा के विना नहीं हो सकता, और उसकी इच्छा का प्रकाश उसके शाश्वत और नित्य नियम द्वारा होता है, जो वह स्वय ही है। हम न तो उसे और न उसके नियम को ही समझते है; ज्ञान के प्रकाश मे थोड़ी सी चमक दिखाई देती है। परन्तु उसके नियम की सूक्ष्म झलक भी मुझ मे हर्ष, आशा और विश्वास भविष्य के लिये उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त है। —हरिजन· दिसम्बर ९,१९३९ ई०

ईश्वर पर विश्वास

इस्लामिया कालेज के एक प्रोफेसर मेरे पास एक ऐसा प्रश्न लेकर आए जिसके लिये वे व्याकुल थे, और जिसके लिये वर्तमान पीढ़ी के बहुत लोग व्याकुल हैं—यह प्रश्न है ईश्वर में विश्वास रखने का।', जैसा कि मैं जानता हूं गांधी जी का विश्वास ईश्वर में है तो भला बतलाइये उस का आधार क्या है ? आपको कौनसा अनुभव हुआ ? ' गांधी जी ने उत्तर दिया—"यह तर्क का विषय नहीं है। यदि आप चाहते हैं कि मैं युक्तियों द्वारा यह बात समझा दूं, तो मैं विवश हूँ। किन्तु मैं आप को यह कह सकता हूं कि मुझे इस बात का इतना विश्वास है कि आपका और मेरा यहां पर बैठना जितनी सच्ची बात है उतनी ही सच्ची बात ईश्वर के अस्तित्व की भी है। तब मैं आपको इस बात का भी विश्वास दिलाता हूं कि मैं वायु और जल के बिना भी रह सकता हूं किन्तु उसके बिना सर्वथा नहीं। आप मेरी आंखें निकाल डालिये, मैं नहीं मरूंगा। आप मेरी नाक काट लीजिये, मैं नहीं मरूंगा; परन्तु आप मेरे हृदय के ईश्वरीय विश्वास को दूर कर दीजिये, मेरी मृत्यु हो जायगी। आप इसे ढोंग कह सकते हैं, परन्तु मैं मानता हूं कि यह वह ढोंग है जिसको मैं उसी प्रकार दृढ़ता से पकड़े हुए हूं, जिस प्रकार कि मैं अपने बाल्यकाल में किसी संकट या भय के अवसर पर राम-नाम को दृढ़ता से पकड़े हुए था। यह बात मुझे एक बूढ़ी दाई ने सिखाई थी।"

"परन्तु क्या आपका विचार है कि अन्ध विश्वास आप के लिए आवश्यक था ?"

"हां, उस प्रकार का अन्धविश्वास मुझे जीवित रखने के लिये आवश्यक था।"

"अच्छा तो ठीक है। क्या मैं आप से पूछ सकता हूं कि क्या आपको अवतारों के समान 'इलहाम' भी आते हैं ?"

"मै जिसे आप 'इलहाम' कह कर पुकारते है उसे नहीं जानता हू और न 'पैगम्बर के इलहाम' को ही। परन्तु मुझे जीवन मे जो अनुभव हुआ है उसका वर्णन करने दीजिए। जेल मे रहकर जब मैने इक्कीस दिन के उपवास करने की ठानी थी, तब मैने उस पर विचार नहीं किया था किन्तु आधी रात से मुझे एक शब्द सुनाई दिया जिससे मै जाग गया और मैने सुना "एक उपवास करो," मैने पूछा—"कितने दिन का ?" उत्तर मिला "इक्कीस दिन का।" अब मुझे यह भी प्रकट करने दीजिये कि मेरा मन इसके लिये उद्यत न था, इस बात को नही चाहता था। परन्तु वह शब्द मुझे सर्वथा स्पष्ट सुनाई दिये थे। मुझे एक बात और कहने दीजिए और फिर यह प्रकरण समाप्त हो जायगा। मैने अपने जीवन मे जितने बडे बडे कार्य किए है वे मैने अपनी बुद्धि से नहीं, परन्तु अन्त प्रेरणा से किये है। उसी को मै 'ईश्वर' कह कर पुकारता हू। मेरी मार्च १९३० की डाडी यात्रा को ही लीजिए। मुझे इस बात का तनिक भी विचार नहीं था कि नमक का नियम किस प्रकार भग हो सकेगा। प० मोतीलाल जी और अन्य मित्र घबरा उठे थे और उनकी समझ मे नहीं आता था कि मै क्या करूगा, क्यों कि मै स्वय ही इसके विषय मे कुछ नही जानता था। परन्तु अकस्मात बात एकाएक समझ मे आगई और आप जानते हैं देश मे एक कोने से दूसरे कोने तक भारी क्रान्ति हो गई। एक अन्तिम बात। अन्तिम समय पर्यन्त मै इस बात को नही जानता था कि ६ अप्रेल १९१९ का दिन उपवास और प्रार्थना का दिन घोषित करना पडेगा। किन्तु उसके लिये मुझे स्वप्न नजर आया। १९३० के समान न तो कोई शब्द और न कोई प्रत्यक्ष दर्शन था—और मैने समझ लिया कि मुझे यही करना चाहिये। प्रभात मे सी० आर० से भी ऐसा ही विचार पाया और देश को घोषित कर दिया, उसका जो भारी स्वागत हुआ उसे आप भली प्रकार जानते है।"

—हरिजन : मई १४, १९३८ ई०

ईश्वर कर्तव्य के निर्वाह में प्रकट होता है

प्रश्न—आपकी आत्मा को भारी कठिनाइयों, सन्देहों और प्रश्नों के समय किस प्रकार पूर्ण समाधान हुआ ?

उत्तर—ईश्वर में जीते-जागते विश्वास से।

प्रश्न—आपको अपने जीवन और अनुभवों में कब कब ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है ?

उत्तर—मैंने देखा है और मुझे विश्वास है कि ईश्वर किसी व्यक्ति के रूप में कभी प्रकट नहीं होता है। वह तो कार्य में आभासित होता है और भारी कठिनताओं में बचाता है।

प्रश्न—क्या आपका यह तात्पर्य है कि जो कुछ भी होता है वह बिना ईश्वर की इच्छा के नहीं हो सकता है।

उत्तर—हां। घटनायें अकस्मात और सहसा ही होती है। एक घटना की मुझे सर्वथा स्पष्ट स्मृति है। उसका सबन्ध अछूतोद्धार के लिए मेरे इक्कीस दिन के उपवास से है। मैं जब रात का सोया तो मुझे कल्पना भी नहीं थी कि मैं दूसरे दिन प्रात काल किसी उपवास की घोषणा करने वाला हूं। अकस्मात् आधी रात को मुझे जगाया और कोई शब्द सुनाई दिया—वह शब्द भीतर का था या बाहर का मैं नहीं कह सकता, धीमे स्वर में, "तुम्हें उपवास करना चाहिये" मैंने पूछा—"कितने दिन पर्यन्त ?" उस स्वर ने फिर से कहा—"इक्कीस दिन" मैंने कहा—"कब से आरम्भ हो ?" उत्तर मिला—"तुम कल से आरम्भ करो।" संकल्प कर लेने के बाद मैं शान्ति पूर्वक सो गया। मैंने प्रभात की प्रार्थना की समाप्ति तक यह बात अपने साथियों को प्रकट नहीं की। मैंने अपने निश्चय को एक कागज के टुकड़े पर लिख कर उनके सामने रख दिया और कह दिया कि वे मुझ से इस विषय में कोई तर्क न करें क्यों कि मेरा निश्चय अटल है।

अच्छा, डाक्टरों की यह धारणा थी कि मैं वैसी अवस्था मे जीवित नहीं रह सकूँगा। परन्तु मेरे अन्दर कोई ऐसी वस्तु थी जो मानो यह कह रही थी कि मै जीवित रह सकूँगा और मुझे अपने निश्चय को पूर्ण करना चाहिये।

प्रश्न—क्या विश्वास पूर्वक आप इसका स्रोत किसी बुरी वस्तु को नहीं मानते है ?

उत्तर—सर्वथा नहीं। मैंने कभी नहीं सोचा कि यह एक भूल है। यदि मैंने अपने जीवन मे कभी कोई आत्मिक उपवास किया है तो वह यही था। भोगों के त्याग से ही कुछ प्राप्त हो सकता है। जब तक आप तप के बल से अपने शरीर को कृश न बना देंगे तब तक आपको ईश्वर साक्षात्कार नही हो सकता है। 'हमारा शरीर ईश्वर का मन्दिर है यह बात मान कर जीवन व्यतीत करना' और जो कुछ है वह तो हमारा शरीर ही है, आत्मा जैसी कोई वस्तु ही नही है' ये दोनों विरुद्ध बातें है।

—हरिजन . दिसम्बर १०,१३८ ई०

ईश्वर का शब्द सुनना

आक्सफोर्ड के शिष्ट मण्डल के सदस्यों ने गांधी जी से पूछा—"आप सदा ईश्वर की ध्वनि सुनते रहते है। हमारा विचार है कि भारत के करोड़ों पुरुष आपकी ही तरह ईश्वर की ध्वनि सुनने लग जायं तो उन सम्पूर्ण समस्याओं का जिन्हें आपने हाथ मे लिया है, स्वय ही समाधान हो जाय। हम सोचते हैं कि इस योजना मे हमारे लिये भी स्थान है और इसीलिये बडी प्रसन्नता से हम आपके पास आए है।"

उन्होंने जवाब दिया—"क्या ही अच्छा होता यदि वही उत्साह जो आप मे है मुझ मे भी होता ? नि सन्देह मुझे सुनने का अनुभव

नहीं, केवल सुनने के प्रयत्न मे ही हूँ। जैसे जैसे मैं सुनता जाता हूँ वैसे वैसे मुझे प्रतीत होता जाता है कि मैं ईश्वर से अभी बहुत दूर हूँ। जब मैं ऐसे नियम बतला सकता हूँ, कि जिनके जीवन मे लाने से ईश्वरीय शब्द सुनाई पड़ता है तो वास्तविकता फिर भी दूर हो जाती है। जब हम यह कहे कि हम ईश्वर के शब्द को सुनते हैं और हमे उत्तर मिलते हैं, चाहे हम उसे सही ठीक करें, फिर भी सम्भव है कि हम धोखा खा सकते हैं। मैं स्वयं भी इस तरह के धोखे से बचा हुआ हूं या नहीं—मैं नहीं कह सकता। लोग मुझे कभी कभी कहते हैं कि क्या आप भूल तो नहीं कर रहे हैं और तब मैं उनसे कहता हूँ 'हां, बहुत सम्भव है, जो कुछ भी मैं आपको कहता हूं वह मेरे दीर्घकाल के विचारों के फल स्वरूप खिंचा हुआ एक चित्र हो।"

"तब देखिये कि किस प्रकार एक व्यक्ति किसी काम के लिये एक मार्ग ग्रहण करता है, यह कहते हुए कि ईश्वर ने मुझे यह मार्ग दिखलाया है, और एक दूसरा पुरुष भी उसी आधार पर ठीक उस के विपरीत मार्ग ग्रहण करता है। मैं आपके सामने एक अच्छा दृष्टान्त उपस्थित करूंगा। राजाजी, जिन्हें आप जानते हैं, कम से कम उनका नाम तो आपने सुना ही होगा, एक दृढ़ ईश्वर भक्त हैं। सन १६३३ई० में यरवदा जेल में जब मैंने आत्मा-शुद्धि के लिए इक्कीस दिन के उपवास शुरू किये और यह प्रकट किया कि मैं यह काम ईश्वर की आज्ञा को पूर्ण करने के लिये कर रहा हूं।"

राज गोपालाचार्य मेरे उपवास को तुड़वाने के लिये मद्रास से मेरे पास आए। उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि मैं बहक चुका हूं और संभवत मैं मर जाऊंगा, और यदि नहीं मरा तो मैं अवश्य पागल हो जाऊँगा। भला देखिये तो मैं अब भी जीवित हूं और मेरी विचार शक्ति स्वस्थ है। इतना होने पर भी राजाजी का यही विचार है कि मैं भुलावे में था और मैं अकस्मात ही बच गया और मेरी तो यही धारणा है कि मैंने वह उपवास अपनी अन्तरात्मा की धीमी पुकार पर किया था।

"मै यह बात आपको सावधान करने को बतलाता हूँ कि सर्वदा यह विश्वास रखना कि मुझे ईश्वर की पुकार सुनाई देती है, अनुचित है। मै इस प्रकार के प्रयत्न के सर्वथा विरुद्ध नही हूँ, परन्तु मै आपको सावधान करता हूँ कि आप इस बात को अलीबाबा के 'सीसम खुल जाओ' वाले जादू के मंत्र के समान मत मान बैठना। यही बात सारी जनता को बतलाने की है। मेरे इस कथन को कोई भी झूठा नही बतलाएगा कि मैने भारत के लोगों को ईश्वर का शब्द सुनने के लिये पूर्ण रूप से सम्मति दी है। मुझे कुछ सफलता भी इस से हुई थी, किन्तु मै अब भी सच्ची सफलता से बहुत दूर हूँ। मै जब आप की दी हुई साक्षी को सुनता हूँ तो मै सावधान और सन्देह वाला भी बन जाता हूँ। दक्षिण अफ्रीका मे एक धर्मप्रचारक आया, उसने अपने धार्मिक व्याख्यान के पश्चात् लोगों से एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करवाए। यह प्रतिज्ञा एक पुस्तक मे छपी हुई थी और उन्हे शराब पीने से रोकने के लिये थी। सुनिये कई लोगो ने इस प्रतिज्ञा को तोड दिया, जिसका मै स्वय साक्षी हूँ। इस मे उन लोगों का कोई दोष नही था। उस प्रचारक के ओजस्वी भाषण को सुन कर घडी भर के लिये उन मे उत्साह उत्पन्न हो गया और उस प्रतिज्ञा पत्र पर उन्होंने हस्ताक्षर कर दिये।"

"मै समझता हूँ कि जो चमकता है वह सब सोना नहीं है। और यह भी बात है कि यदि किसी व्यक्ति ने वास्तव मे ही ईश्वर का सन्देश सुना है तो वह पिछड नही सकता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक मनुष्य जिसे कि तैरना आ चुका है वह उसे नहीं भूल सकता है। ईश्वर की प्रेरणा को सुनने वाले लोगों का जीवन प्रति दिन बहु मूल्य होता जाता है।"

"मै आप का उत्साह भंग करना नहीं चाहता हूँ। किन्तु यदि उसका आधार एक दृढ़ चट्टान पर है तो अच्छा है कि ईश्वर की आवाज भी पक्की चट्टान के सामने दृढ़ता से सुनाई पडेगी।"

"इस प्रकार का सुनना सिद्ध करता है कि वह ईश्वर की आवाज को सुनने के योग्य है और इस प्रकार की योग्यता ईश्वर के लिये निरन्तर धैर्य से प्रयत्न करने और राह देखने से उत्पन्न होती है। शंकराचार्य ने इस विधि की तुलना एक छोटे से पत्ते से समुद्र का पानी खाली करने के प्रयत्न से की है। यह विधि इस प्रकार अनन्त है और जन्म जन्मान्तर पर्यन्त चलती है।"

"और फिर भी प्रयत्न ऐसा स्वाभाविक होता है जितना कि सांस का लेना या आंखों का हिल-हिलाना, और ये सभी वस्तुएं बिना प्रतीत हुए ही होती रहती हैं। मैं सम्मति देता हूं कि तुम इस निरन्तर प्रयत्न को चालू रखो केवल वही हमें ईश्वर का साक्षात्कार करवा सकता है।"

—'हरिजन' अक्टूबर ७,१९३६ ई०

रचनात्मक अनुभव

प्रश्न—आपको अपने जीवन में कौन कौन से क्रियात्मक अनुभव हुए हैं? यदि आप अपने अतीत के दिनों पर दृष्टिपात करें तो क्या आप बतला सकते हैं कि किन किन कारणों से आपका ईश्वर में विश्वास दृढ़ हुआ? क्या जब सभी परिस्थितियां उसके प्रतिकूल हो गई होंगी और आपको जब निराशा के बादलों ने घेर रखा होगा तब भी आपका विश्वास ईश्वर में दृढ़ हो गया जब यह असम्भव प्रतीत होता था?

उत्तर—ऐसे असंख्यों अनुभव हुए हैं। परन्तु जब आपने मेरे सामने प्रश्न रखा तो मुझे एक घटना स्मरण आगई, जिसने मेरी जीवनी के मार्ग को ही परिवर्तित कर दिया है। वह घटना मेरे दक्षिणी अफ्रीका में पहुंचने के सात दिन पश्चात हुई। मैं वहां केवल सांसरिक और स्वार्थ के कार्य से गया था। मैं बालक ही

था और उसी समय इंग्लैंड से लौटा था, मुझ मे पैसा कमाने की अभिलाषा थी। तुरन्त ही, जो ग्राहक मुझे ले गया था उसने मुझे प्रिटोरिया से डरबन जाने का आदेश दिया। वह एक सरल यात्रा नहीं थी और उसके आगे जोहन्सवर्ग तक घोडा गाडी से जाना था। रेल का प्रथम श्रेणी का टिकिट मेरे पास था किन्तु मेरे पास उस मे बिछौने का टिकिट नहीं था। मेरिटजवर्ग मे जहा बिछौने प्राप्त होते थे, गार्ड आया और उसने मुझे नीचे उतार दिया और कहा कि आगे के डिब्बे मे बैठो। मै नहीं गया और रेल भक्-भक् करती हुई मुझे छोड कर चली गई। मै ठंड मे ठिठुरता ही रह गया। वहा एक क्रियात्मक अनुभव हुआ। मुझे अपनी जीवनी सकट मे प्रतीत हुई। मैं अंधेरे वेटिंग रूम (प्रतीक्षा भवन) मे घुसा। उस मे एक गोरा बैठा हुआ था। मैं उस से डरा। मैने अपने आप से प्रश्न किया कि मेरा क्या कर्तव्य है? क्या मै भारत को लौट जाऊ अथवा ईश्वर को अपना सहायक मान कर जो भी सकट सम्मुख आय उन्हे झेलता हुआ आगे बढू? मैंने निर्णय कर लिया कि यहीं ठहर कर कठिनाइयों का सामना करूंगा। मेरी यथार्थ अहिंसा की परीक्षा वहीं से उसी समय आरम्भ हुई और ईश्वर ने उसी यात्रा मे मेरी जाच करनी आरम्भ कर दी। गाडीवान ने मुझे इस कारण से बुरी तरह पीटा था कि मैने उस बैठक छोड दिया था जो उसने मुझे बतलाई थी।

—क्या उन कष्टों ने, चाटों के बाद चाटों के आघात ने आपकी आत्मा को प्रज्वलित कर दिया?

—हां, वह मेरे जीवन का सब से मूल्यवान् अनुभव था।

—हरिजन दिसम्बर १०, १९३८ ई

समय समय पर ईश्वर जो संकेत करता रहता है, उन्हें मनुष्य की मोटी बुद्धि समझ नहीं सकती है। हमें उस गहरी निद्रा से जगाने के लिये और यह जानने के लिये कि अपने को विलीन कर देने से ही आत्मा का ज्ञान होता है, हमारे कानों को सचेत करने के लिये ढोल के शब्द की आवश्यकता है। —यंग इण्डिया' अगस्त २५, १९२७ ई०

मेरे जीवन का संदेश

पं० ... जो कि पंजाब प्रान्त में अमृतसर में 'अखिल भारतवर्षीय ... सर्जन्स एसोसिएशन' के सभापति थे उन्होंने कुछ दिन हुये एक सार्वजनिक पत्र मुझे सम्बोधित करते हुए 'यंग इण्डिया' के संपादक के पास भेजा। वे शब्द जिनमें कि प्रशंसा के पुल बांधे गए हैं और ... ही भरमार है, उन्हें छोड़ कर और व्याकरण की भूलों को सुधार कर मैं उस पत्र के नीचे अवतरित करता हूं

"मैं एक ब्राह्मण हूं, डाक्टर हूं और आपकी तरह वृद्ध पुरुष हूं। यदि इन तीन गुणों को लेकर मैं आपको एक सम्मति दूं तो मैं सोचता हूं कि मैं किसी प्रकार सभ्यता की सीमा का उल्लंघन नहीं करता। यदि आप उसमें वृद्धिमत्ता और सचाई को देखें और आपकी बुद्धि में और विचार में यह बात जंचे तो कृपा करके उसे अपनाइयेगा।"

"आपको संसार का बहुत अनुभव है, आपने उसके विषय में बहुत कुछ पढ़ा है। इसी कारण से आपको आश्चर्य जनक अनुभव है। परन्तु इस जगत में अभी तक कोई अन्य व्यक्ति उस कार्य को नहीं कर पाया है जो आपने उठाया है। दृष्टान्त के लिए बुद्ध को ही लीजिए वे एक ऊंची नैतिकता को रखते हुए भी सारे हिन्दुस्तान को बौद्ध नहीं बना सके।"

"शंकराचार्य में एक अत्यन्त उच्च मानसिक शक्ति थी फिर भी वे समस्त भारत वासियों को वेदान्ती नहीं बना सके। ईसामसीह में एक

प्रबल आत्मिक बल था फिर भी सभी यहूदियों को वे ईसाई नहीं बना सके। मैं नहीं समझता और क्षण भर के लिये भी मैं इस बात को मानने के लिये उद्यत नहीं हूँ कि आप अपने कार्य को पूर्ण कर सकेंगे। इन ऐतिहासिक तथ्यों के होते हुए भी यदि आप अपने जीवन काल में ही उसमे सफलता पाने की आशा रखते हैं, तो श्रीमान मैं अधिकार के साथ कहता हूँ कि उसे स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नही कह सकते हैं।"

"ससार मे भारी परीक्षाओं, कष्टों, और कठिनाइयों के बिना है ही क्या ? जैसे जैसे मनुष्य सासारिकता से लिप्त होता जाता है वैसे ही वैसे उसे अधिकाधिक व्याकुलता होती जाती है। वह अपनी आत्मिक और मानसिक शान्ति को नष्ट ही करता जाता है। इसी कारण से प्राचीन काल से महात्मा लोग सांसारिक व्याकुलताओं कष्टों और चिन्ताओं से दूर रहते थे। वे पूर्ण शान्ति पाने और मानसिक उन्नति करने का प्रयत्न करते थे। उन्हे इसी मे शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त होते थे।'

"कारागृह के जीवन ने आपका जीवन और बल मे भारी परिवर्तन कर दिया है और रोग ने आपके निर्बल बना दिया है। इस लिये ऐसी स्थिति से क्या ही अच्छा हो कि आप अपने जीवन को शान्ति से व्यतीत करें और शेष दिन अकेले ही किसी गुहा मे बैठ कर ईश्वर-भजन मे समाप्त करें। पूर्ण आत्मिक शान्ति के साथ आत्म-दर्शन करें। क्योंकि आपका स्वास्थ्य ऐसा नहीं है कि आप सासारिक चिन्ताओं को अधिक सहन कर सकें। यहा पर यह कहना अनुचित नही होगा कि सभी अच्छे अधिकारियों ने आपके साथ अच्छा वर्ताव किया और सहानुभूति की है। जिस यूरोप की औषध और शल्यक्रिया की प्रणाली का आपने अनेक वार विरोध किया है, उसी ने आप को मृत्यु के भयकर मुख मे जाने से बचाया है। अंग्रेजी अधिकारियों ने आपको कष्ट और आवश्यकता के समय पर बहुत सहायता दी है।"

"जो मित्र आवश्यकता के समय सहायक होता है, वही सच्चा मित्र है। आंग्ल शासकों ने जो आपके जीवन को बचाया है और जो

आपको कारागृह से छोड़ा है, उसका प्रत्युपकार सच्ची मित्रता और कृतज्ञता से चुकाना आपका कर्तव्य है। यदि किसी प्रकार से भी आप अपने शब्दों और कार्यों द्वारा ऐसा नहीं कर सकते तो कृपा करके आप राजनीतिक कार्य क्षेत्र में खड़े न रहिये। फिर भी यदि आपकी अशान्त आत्मा आपको शान्ति पूर्वक न बैठने दे तो इस भूमि पर जो कि बड़े बड़े ऋषि-मुनियों की जन्म-भूमि है अपने भारतीय भाइयों को आत्म-ज्ञान देने का कार्य कीजिए। उन्हें सच्चा आत्म-ज्ञान पाने का मार्ग बतलाइये। ऐसा करने से आप इस पृथ्वी के राज्य को पाने के स्थान पर स्वर्ग का राज्य पायेंगे।'

मेरी सम्मति में लेखक पूर्ण तया सच्चा है और इसी कारण से इतनी अभिरुचि रखता हूँ। और नहीं तो इसी एक कारण से मैं उन भ्रमों को दूर कर देना आवश्यक समझता हूँ जो मेरे उद्देश्यों से सम्बन्ध रखते हैं।

इसलिये सब से पहले मैं अपने विचार औषध विषय में प्रकट करूँगा। मेरे सम्मुख 'भारतीय होम रूल' नहीं है परन्तु मुझे इतना भली भाँति स्मरण है कि उसमें जो विचार प्रकट किये गये हैं उनमें से एक भी परिवर्तन करने योग्य नहीं है। यदि मैं उसे अंग्रेजी पढ़ने वालों के लिए और अंग्रेजी में लिखता तो उसी विचार को इस प्रकार उपस्थित करता कि अंग्रेज बड़े हर्ष से उसे स्वीकार करते। मूल पुस्तक गुजराती में है और नेटाल के 'इण्डियन ओपिनियन' के गुजराती पढ़ने वालों के लिये लिखी गई है। इसके अतिरिक्त उसमें जो कुछ भी लिखा है वह एक ऊँचे आदर्श शासन का वर्णन है। यह एक साधारण भूल है कि लोग बुरे साधनों को जब दोष लगाते हैं तो उनसे सबन्ध रखने वाले व्यक्तियों को भी दोष-पात्र मान बैठते हैं। औषध को बुरा कह सकते हैं परन्तु चिकित्सकों को बुरा कहना आवश्यक नहीं है। मेरे कई बड़े बड़े डाक्टर मित्र हैं। जब पुस्तक लिखी गई तब मैंने निःसंकोच आवश्यकतानुसार उन में

सम्मति भी ली। लेखक का कथन है कि ऐसा करना औषध को उपयोग मे लेने के सवन्ध मे मेरे विचार से मेल नही खाता। मेरे कई मित्रों ने विभिन्न रीति से उसी वात को मुझे कहा भी है। मै अपराधी नहीं हू। परन्तु मै जानता हू कि मै एक पूर्ण पुरुष नही हूँ। मेरे लिए यह एक दुर्भाग्य का विषय है कि मै पूर्णता से वहुत दूर हूँ। मैं अत्यन्त नम्रता से पूर्णता पाने को प्रयत्नशील हूँ। मुझे उसका मार्ग ज्ञात है। परन्तु मार्ग को जानना ही लक्ष्य पर पहुचना नही है। यदि मुझ मे पूर्णता होती, यदि विचार में भी मैंने अपनी सभी इन्द्रियो पर सयम कर लिया होता तो मुझ मे शारीरिक पूर्णता भी रहती। मै स्पष्टतया इस वात को स्वीकार करता हूँ कि प्रति दिन मुझे अपने विचारों पर सयम प्राप्त करने के लिये एक भारी मानसिक शक्ति का व्यय करना पडता है। जव मुझे उस मे सफलता प्राप्त हो जायगी, यदि कभी हो जाय, तो आप कल्पना कर सकते है कि मुझ मे सेवा के लिए कितना शक्ति भंडार भरा-पूरा रहेगा। मेरा विचार है कि मुझे एपेन्डीसाइटिस (पेट की एक वीमारी का नाम) का रोग अपने मन और विचारों की दुर्वलता के कारण हुआ। उसी प्रकार मेरा यह भी विचार है कि मैने जो डाक्टरों से चीर-फाड करवाई, वह मेरी मानसिक निर्वलता का एक अन्य प्रमाण है। यदि मुझ मे अपनेपन का तनिक विचार न रहता तो मै अवश्य ही प्रकृति पर भरोसा करता। किन्तु मै तो वर्तमान शरीर मे रहना चाहता था। पूर्ण अनासक्ति पाना सरल नही है। वह तो धैर्य के साथ परिश्रम और प्रार्थना करने से प्राप्त होती है। अव प्रश्न आता है उपकार मानने का, मैंने हृदय से कई वार सार्वजनिक रूप में कर्नल मेडांक और उनके सहकारियों को उनकी असीम कृपा के लिये धन्यवाद दिया है। परन्तु कर्नल मेडांक ने जो दया का वर्ताव मेरे साथ किया उसका और उस शासन प्रणाली का, जिसका मै विरोधी हू, कोई सवन्ध नहीं है। यदि मैंने डायरिजम के विषय मे अपने विचार परिवर्तित कर दिये होते तो कर्नल मेडांक स्वय मेरे संवन्ध मे अच्छी भावना न

रखते। क्यों कर्नल मेडॉक एक योग्य सर्जन थे और इसी लिये उन्होंने अपने कर्तव्य को पूर्णतया निबाहा। मुझे शासन का कृतज्ञ बनने का भी कोई कारण नहीं है कि मुझे अच्छी चिकित्सा की सहायता पहुँचाकर या निश्चित अवधि से पूर्व कारामुक्त कर के शासन ने मेरे साथ कोई विशेष उपकार नहीं किया। पहली वस्तु का प्रबन्ध प्रत्येक कारावासी के लिये करना उसका कर्तव्य है। दूसरी वस्तु ने मुझे सन्देह और दुविधा में डाल दिया है। मुझे जेल के अन्दर भला हो बुरा, कैसा भी क्यों न हो, परन्तु अपना मार्ग अवश्य ज्ञात था। जेल के बाहर, यद्यपि कि मैं धीमे धीमे अपना स्वास्थ्य पाता जा रहा हूँ, मैं निश्चय से नहीं जानता कि अपना मार्ग कैसे बनाऊँ।

अब पत्र के मुख्य विषय पर आइये। अवतारों के कार्य के विषय में भ्रम होने के कारण से और मेरे जैसे पुरुष की उनके साथ तुलना करने की विचित्र (मेरे लिये) बात से लेखक के मन में गड़बड़ उत्पन्न हो गई है। मैं नहीं मानता कि बुद्ध ने अपना कार्य पूर्ण नहीं किया। उनका लक्ष्य निर्वाण पाने का था जो कि कहा जाता है, उन्होंने पा लिया। दूसरों को अपने धर्म में लाना एक सहकारी वस्तु है—यदि उस पवित्र कार्य के विषय में ऐसा कहा जा सके। ईसाई धर्म के ग्रन्थों में लिखा है कि जेसस ने स्वतः इस बात को स्वीकार किया है कि 'मेरा कार्य पूर्ण हो चुका है।' न उनका प्रेम का काम ही उनके बाद समाप्त हो गया। उसका सब से बड़ा भाग सदा बना रहेगा। उनकी सेवा का समय व्यतीत हुए दो-तीन सहस्र वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। यह अवधि काल के असीम चक्र का अत्यन्त छोटा भाग है।

मैं नहीं चाहता हूँ कि लोग मुझे अवतारों के समान मानें। मैं तो अत्यन्त नम्रता से सचाई की खोज में लगा हुआ हूँ। मैं अपने आप को पहचानने के लिये व्याकुल हुआ जा रहा हूँ। मैं जीते-जी ही मोक्ष पाना चाहता हूं। जाति की सेवा मेरी आत्मा की मुक्ति के पाठ की एक शिक्षा

है इस प्रकार मेरी सेवा सर्वथा स्वार्थ पूर्ण मानी जा सकती है। मुझे संसार के नश्वर शासन से कोई प्रेम नहीं है। मैं तो स्वर्ग के राज्य को पाने के प्रयत्न मे हू—अर्थात् मोक्ष को पाने की मेरी अभिलाषा है मुझे अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये किसी गुहा का आश्रय ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। मेरे साथ तो एक गुहा लगी लगी हुई है ही, केवल उसको समझ लेना ही शेष है। एक गुहा मे रहने वाला आकाश दुर्ग बना सकता है, परन्तु प्रासादों मे बसने वाले राजा जनक के समान मनुष्य के लिये प्रासाद कोई वाञ्छनीय वस्तु ही नहीं है। गुहा मे रहने वाला पुरुष जो कल्पना के पखों से ससार का चक्कर करता है—सुखी नहीं है। परन्तु जनक के समान राजसी ठाठ से रहने वाला पुरुष इतनी शान्ति प्राप्त करता है जो कल्पना मे भी न आय। मुझे तो अपने लिये मोक्ष का एक ही मार्ग दिखाई देता है—अर्थात अपने देश की सेवा निरन्तर करते रहना और उसके द्वारा मानवता की सेवा करते रहना। गीता के वाक्यों मे जो शिक्षायें भरी पड़ी है उनके अनुसार मै अपने जीवन को व्यतीत करना चाहता हूं। मै शत्रु और मित्र दोनों के साथ प्रेम से रहना चाहता हू। इसलिये चाहे एक मुसलमान, ईसाई या हिन्दू मुझ से घृणा करने लग जाय या मुझे तिरस्कार की दृष्टि से देखने लग जाय तो भी मै उससे प्रेम करना चाहता हू और उसकी सेवा करना चाहता हू—ठीक उसी प्रकार जैसे मै अपनी पत्नी तथा अपने पुत्र से प्रेम करता हूं—चाहे वे मुझ से घृणा ही क्यों न करें। इस लिये मेरी देश सेवा मेरे लिये उस अर्स।म स्वतन्त्रता और शान्ति के साम्राज्य की यात्रा का एक भाग है। इसलिये स्पष्ट हो गया कि मेरे लिये कोई भी राज नीति ऐसी नहीं है जो धर्म से पृथक् हो। जो राजनीति धर्म से सम्बन्ध नहीं रखती है वह मृत्यु का पाश है, क्योंकि वह आत्मा को मार डालता है।

—यग इण्डिया : अप्रेल ३,१६२४ ई०

—:❀❀:—

पूर्णता केवल ईश्वर का ही गुण है। उसका न तो वर्णन किया जा सकता है और न अन्यत्र परिवर्तन। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार ईश्वर में पूर्णता है, उसी प्रकार मनुष्य में भी पूर्णता आ सकती है। हम सभी के लिये यह आवश्यक है कि उसे पाने के लिये अभिलाषा रखें, परन्तु उस सुखमय स्थिति को पाने पर न तो उसका वर्णन ही किया जा सकेगा और न उसकी व्याख्या ही की जा सकेगी।

—यंग इंडिया, सितम्बर २२.१९२७ ई०

प्रश्न — आप एक पथदर्शक का जीवन बिताते हैं। क्या आप अपने नेतृत्व के अनुभवों का वर्णन करने की कृपा करेंगे?

उत्तर — मैं ईश्वर को किसी व्यक्ति के रूप में नहीं मानता हूं। मेरे लिये सचाई ईश्वर है, ईश्वरीय नियम और ईश्वर दो भिन्न बातें नहीं हैं। सांसारिक राजा और उनके नियम अलग अलग भिन्न भिन्न होते हैं। ईश्वर स्वयं ही एक उच्ची श्रेणी का नियम है। इस लिये ईश्वर नियम को तोड़ता है ऐसी कल्पना अनुचित है इसलिये वह नियम से पृथक रह कर हम पर शासन नहीं करता। जब हम यह कहते हैं कि वह हमारे कार्यों की जांच करता है तो हम केवल मनुष्यों की भाषा का प्रयोग करते हैं। और हम उसकी मंशा जानने का प्रयत्न करते हैं। अन्यथा वह और उसका नियम सर्वत्र व्याप्त है; और प्रत्येक वस्तु का शासन किये हुए है। इसलिये मैं नहीं सोचता कि वह हमारी प्रत्येक प्रार्थना का विस्तार से उत्तर देता है; परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि वह हमारे कार्यों पर दृष्टि रखता है, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि बिना उसकी इच्छा के घास की एक पत्ती तक भी न तो उत्पन्न हो सकती है और न हिल सकती है। हमारी यह स्वतन्त्र इच्छा जिसका कि हम उपभोग करते हैं, भीड़ वाले जल यान के यात्री की स्वतन्त्रता से भी न्यून महत्व की है।

प्रश्न—क्या आपको परमात्मा के साथ एकता पाने मे स्वतन्त्रता की प्रतीति होती है ?

उत्तर—हा, मुझे होती है। मुझे उस प्रकार की घबराहट नहीं होती, जो कि यात्रियों से खचा-खच भरे हुए जहाज के तख्तों पर हुआ करती है। यद्यपि मै इस बात को अच्छी प्रकार अनुभव करता हूँ कि मेरी स्वतन्त्रता किसी यात्री की स्वतन्त्रता की अपेक्षा अति न्यून है। मै उस स्वतन्त्रता को उच्च मानता हूँ; क्योंकि मैने उसे गीता की केन्द्रीय शिक्षा द्वारा प्राप्त किया है—अर्थात् मनुष्य स्वयं अपने भाग्य को बनाता है, उसे अपनी स्वतन्त्रता के उपयोग मे कोई प्रतिबन्ध नही वह अपनी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकता है। परन्तु फल पर उसका अधिकार नहीं। जिस क्षण उसे यह प्रतीत होता है कि मैं भी कुछ हूँ, तो उसे दुख उठाना पडता है। —हरिजन, मार्च २३, १९४० ई०

—❀❀❀—
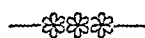
अध्याय २

ईश्वर है

अनेक सवाददाता प्रायः मुझ से ईश्वर के सम्बन्ध में उत्तर पाने के लिये प्रश्न पूछते ही रहते हैं। एक अंग्रेज मित्र के शब्दों में 'यंग इण्डिया' में जो 'ईश्वरीय बौनापन' है, उसी का दण्ड मुझे इस प्रकार भोगना पड़ता है। यद्यपि उस भांति के सभी प्रश्नों पर ध्यान देने से मैं विवश हूँ फिर भी निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है—

"मैंने आपके ता० १०-५-१९२७ ई० के 'यंग इण्डिया' के पृष्ठ १५९ को पढ़ा। जिस में आप लिखते हैं—'मैं सोचता हूँ कि इस जगत् में निश्चित वस्तुओं की आशा रखना भूल है। यहां पर बिना ईश्वर के जो कि यथार्थ (यंग इण्डिया पृष्ठ १५२) में है शेष सभी कुछ अनिश्चित है परमात्मा लंबे समय तक सहन करने वाला और धैर्य से प्रतीक्षा करने वाला है। वह अत्याचारी को समय समय पर गम्भीर चेतावनी देता हुआ अपने विनाश की ओर बढ़ने देता है।'"

"मैं बड़ी नम्रता के साथ निवेदन करता हूं कि ईश्वर अनिश्चित नहीं है। उसका चैन चारों ओर से सचाई से घिरा हुआ होना चाहिये। वह विचित्र प्रकार के बुरे लोगों द्वारा संसार का बिगाड़ क्यों होने देता है? बुरे लोग मनमाने उपायों से चारों ओर फैल जाते हैं और बुराई को फैलाने लगते हैं और इस प्रकार अनैतिकता और असत्य को सदा के लिये स्थिर कर जाते हैं।"

"क्या ईश्वर जो कि सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् है अपनी अनन्त सर्वज्ञता से बुराई को जान कर के, उसे अपनी असीम शक्ति से विनष्ट करके, और सभी प्रकार के दुराचारों को जड़ से मिटा कर के दुश्चरित्रों को बढ़ने से रोक नहीं सकता?"

"ईश्वर एक लम्बे समय पर्यन्त बुराई को क्यों सहन करता है और धैर्य को बनाये रखता है ? यदि उसकी यही स्थिति बनी रही तो लोगों पर उसका क्या प्रभाव पड सकता है ? ससार दुराचार असत्य और अत्याचार के साथ आगे चलता ही जाता है।"

"यदि ईश्वर किसी अत्याचारी को स्वत विनाश की ओर जाने का अवसर देता है, तो वह उस अत्याचारी का किसी निर्बल पर अत्याचार करने के पूर्व ही मूलोच्छेद क्यों नहीं कर देता ? अत्याचार को फूलने फलने का क्यों अवसर देता है ? अत्याचारी अपने अत्याचार से सहस्त्रों व्यक्तियों का सर्वनाश कर देता है तब उसका समूल अन्त होता है—इसका क्या कारण है ?"

"ससार जितना बुरा पहले था, वैसा ही अब भी है। उस ईश्वर पर क्यों विश्वास रक्खा जाय, जो अपने अनन्त सामर्थ्य का ससार के परिवर्तन के लिये उपयोग नही करता और उसे भले और सच्चे पुरुषों से नही बसाता ?"

"मै उन विषयी व्यक्तियों को और उनके दोषों को भी जानता हूँ जो एक लम्बा और स्वस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दुष्ट पुरुष अपनी बुराईयों के कारण शीघ्र क्यों नहीं मर जाते ?"

"मै ईश्वर मे विश्वास रखना चाहता हूँ, परन्तु मेरे विश्वास के लिये कोई आधार नहीं है। 'यंग इण्डिया' द्वारा मुझे समझाने की कृपा कीजिये, जिससे मेरा अविश्वास विश्वास के रूप मे परिवर्तित हो जाय।"

तर्क उतना ही प्राचीन है, जितना आदम। इसके लिए मेरे पास अपना मौलिक, कोई उत्तर नहीं है। परन्तु मै क्यों विश्वास रखता हूँ उसी का स्पष्टी करण करता हू। मुझे ऐसा करने का साहस इस लिये हुआ है कि मुझे यह विदित हुआ है कि कुछ नवयुवक मेरे विचारों और कार्यों को जानने के बड़े इच्छुक हैं।

एक अनिर्वचनीय रहस्यमयी शक्ति प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। मैं उसको अनुभव करता हूँ, यद्यपि मैं उसे देख नहीं सकता।

यह वह छिपी हुई शक्ति है जो कि अपने आप प्रतीत हो जाती है और फिर भी सभी प्रमाणों से दूर है; क्योंकि यह उन सभी पदार्थों से दूर है जिन्हें मेरी इन्द्रियां समझ सकती हैं। यह इन्द्रियों से भी दूर है।

किन्तु किसी सीमा पर्यन्त ईश्वर है यह तथ्य सिद्ध करने के लिये तर्क उपस्थित किया जा सकता है। सामान्य विषयों में भी हमें ज्ञात है कि लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि कौन शासन करता है या क्यों और वह किस भांति शासन करता है। और फिर भी वे जानते हैं कि एक ऐसी शक्ति है जो वस्तुतः शासन करती है। पिछले वर्ष की अपनी मैसूर यात्रा में मैं बहुत से दीन ग्रामीणों से मिला और जांच करने पर मुझे प्रतीत हुआ कि उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि मैसूर में कौन राज्य करता है। उन्होंने केवल इतना ही कहा कि कोई देवता राज्य करते हैं। यदि इन दीन पुरुषों का ज्ञान अपने शासक के विषय में इतना न्यून है, तो मैं जो कि ईश्वर, संसार और ससारिक शासन की अपेक्षा छोटा हूं इस बात के लिये क्यों आश्चर्य करूं कि ईश्वर जो कि राजाओं का भी राजा है उसका साक्षात्कार नहीं कर सका हूं। फिर भी मैं इस बात को उसी प्रकार अनुभव करता हूँ जिस प्रकार कि वे दीन देहाती मैसूर के विषय में समझ रहे हैं—अर्थात सारे जगत में एक प्रकार की सुन्दर व्यवस्था है। प्रत्येक चराचर के ऊपर एक नित्य नियम राज्य करता है। वह एक अन्धा नियम नहीं है; क्योंकि कोई भी अन्धा नियम प्राण धारी जगत के रहन-सहन पर नियन्त्रण नहीं कर सकता। सर जे० सी० बोस ने जो अनोखी बात ढूंढ निकाली है उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। अब तो यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि जड़ पदार्थों में भी जीवन है। तब वह नियम जो हमारे जीवन पर नियन्त्रण करता है, ईश्वर है। नियम और नियन्ता दोनों एक ही हैं।

मैं उस नियम को और उस नियम के बनाने वाले को अस्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मैं उन दोनों के विषय मे अति न्यून ज्ञान रखता हूँ। जैसे यदि मैं सांसारिक शक्ति के अस्तित्व को न मानूँ या न जानूँ तो मुझे कोई लाभ नहीं हो सकता है; ठीक उसी प्रकार ईश्वर और उसके नियम को नहीं मानने पर भी उस के प्रभाव से मैं छुटकारा नहीं पा सकता। जिस प्रकार सासारिक नियन्त्रण को स्वीकार करने पर जीवन सरलता से व्यतीत होने लगता है, उसी प्रकार विनय और शान्ति से ईश्वरीय शक्ति को मान लेने पर जीवन यात्रा अधिक सरल बन जाती है। मै धीरे धीरे इस बात को अनुभव करता हूँ कि मेरे चारों ओर के सभी पदार्थ जबकि सदा ही परिवर्तित और नष्ट भ्रष्ट होते जा रहे है तब भी उस परिवर्तन के मूल मे एक अपरिवर्तित जीवित शक्ति विद्यमान है, वही पूर्णतया उन सभी पदार्थों को सम्हाले हुए है जो कि उत्पन्न होते है, बिगड़ते है और पुन: उत्पन्न होते है। वही सूचना देने वाली शक्ति या सामर्थ्य ईश्वर है। और जब कि वे सम्पूर्ण पदार्थ जिन्हे कि मैं अपनी इन्द्रियो के द्वारा जान सकता हूँ, स्थिर रहने वाले नही है, केवल एक ही शक्ति ऐसी है जो सदा स्थिर रहेगी—अर्थात ईश्वर।

क्या वह शक्ति लाभ दायक है, या हानि कारक? मै तो उसे सर्वथा लाभप्रद मानता हूँ। क्योंकि मै देख सकता हूँ कि मृत्यु के भीतर भी जीवन बना रहता है, झूठ के भीतर सचाई रहती है और अन्धकार मे भी प्रकाश रहता है। इससे मै यह मानता हूँ ईश्वर— जीवन सचाई और प्रकाश है। वह प्रेम है। वही सब से उच्च ईश्वर है।

परन्तु वह ईश्वर नहीं कहला सकता जो केवल मन को सन्तोष देने का ही कार्य करता है। ईश्वर को ईश्वर बनने के लिये हृदयों पर अधिकार करना चाहिये—उन्हे परिवर्तित करना चाहिए। उसे अपने भक्त के छोटे से छोटे कार्य मे भी प्रकट होना चाहिये। ऐसा तो केवल पूर्ण आत्म-साक्षात्कार होने पर ही सम्भव है—जिस की स्थिति असीम है उस

को पाँचों इन्द्रियाँ नहीं जान सकती हैं। इन्द्रियों का ज्ञान झूठा और भ्रम में डालने वाला हो सकता है और प्राय होता ही है—चाहे वह हमें कितना ही सच्चा क्यों न प्रतीत हो। जहां इन्द्रियों के परे साक्षात्कार होता है— वही सच्चा साक्षात्कार है। वह बाह्य प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता। उसका प्रमाण तो उन लोगों का रहन-सहन और आचरण से प्राप्त होगा, जिनका जीवन ही अपने भीतर ईश्वर को यथार्थ रूप में देख लेने के फल स्वरूप परिवर्तित हो चुका है।

यह बात आपको अभी तक जितने भी अवतार और सन्त हो चुके हैं उनके अनुभवों से प्रमाणित हो सकती है। ऐसे परमात्मा के दूत और सन्त सदा से सभी देशों में और सभी समयों में उत्पन्न होते आए हैं। इस प्रकार के प्रमाण को न मानना अपने आप को अस्वीकार करने के समान है।

इस तरह का साक्षात्कार अटल विश्वास से उत्पन्न होता है। जो ईश्वर का साक्षात्कार चाहता है, उसे चाहिए कि वह उस में अचल विश्वास रखे। और क्योंकि बाह्य प्रमाणों से विश्वास जमाया नहीं जा सकता है अतः हमें उसके लिये जगत् के आध्यात्मिक शासन पर विश्वास रखना सरल उपाय प्रतीत होता है—इसलिये नैतिक नियम की महत्ता को सचाई और प्रेम के नियम को हमें मानना है। सचाई और प्रेम के विरोधी जितने तत्त्व हैं उनको छोड़ने से विश्वास बद्ध मूल होता है।

परन्तु ऊपर जो कहा गया है उससे लेखक की युक्ति का समाधान नहीं होता। मैं उनके समक्ष स्वीकार करता हूँ कि मैं युक्ति द्वारा इस बात को उन्हें समझाने में विवश हूँ। विश्वास युक्ति से बढ़कर है। जो कुछ भी मैं उन्हें परामर्श दे सकता हूँ वह यह है कि असम्भव के लिए प्रयत्न नहीं करना चाहिये। मैं इस बात का किसी युक्तिसंगत उपाय से उत्तर नहीं दे सकता कि बुराई क्यों विद्यमान है। इस प्रकार करने की इच्छा

रखना ईश्वर की समता करना है। इसलिये मै नम्रता से बुराई को जैसी वह है स्वीकार करता हूँ। और मै ईश्वर को लम्बे समय तक सहन करने वाला और धैर्य वाला भी इसी लिए मानता हूँ क्योंकि वह ससार मे बुराई को रहने देता है। मैं जानता हूँ कि उसमे बुराई विद्यमान नहीं है और फिर भी यदि बुराई वर्तमान है तो वह उसका निर्माता है और फिर भी वह उसको स्पर्श तक नहीं कर सकती।

मै इस बात को भी जानता हूँ कि जब तक मैं अपने प्राणों के सकट पर भी बुराई के साथ युद्ध करके उसे हरा न दूँगा तब तक मै ईश्वर को नहीं पा सकूँगा। मेरी यह धारणा अपने ही सीधे-सादे अनुभव के आधार पर दृढ बनी हुई है। मै जितना जितना पवित्र बनने का प्रयत्न करता जाता हूँ, उतना ही उतना मै ईश्वरत्व के अधिक समीप पहुँचता जाता हूँ। मै कितना अधिक इसके समीप पहुँच जाऊँगा जब कि मेरा विश्वास न केवल एक बहाना ही बना रहेगा, जैसा कि वह आज है, परन्तु जब वह हिमालय की भाति अडिग बन जायगा और इतना निर्मल और उज्ज्वल बन जायगा जितना कि उसके (हिमालय के) शिखरों पर जमा हुआ हिम। इतने मे मै लेखक से निवेदन करता हूँ कि वह न्यूमन की इस प्रार्थना को गाय जिसे उसने अपने अनुभव से लिखा है—"चारों ओर अन्धकार व्याप्त है। हे, दयालु प्रकाश तू मुझे उसे चीर कर पार लगा दे। रात्रि काली अन्धकार मयी है और मैं अपने घर से बहुत दूर हूँ। तू मुझे अपना रास्ता पूर्ण करवा दे, तू मेरे पैर थामे रह, मै दूर का दृश्य देखना नही चाहता हूँ, मेरे लिये तो एक सीढी ही बहुत है।"

—यग इण्डिया अक्टूबर ११ १९२८ ई०

'ईश्वर है'

'यंग इण्डिया' में उक्त लेख को पढ़कर एक पाठक ने इमसन का एक अत्यन्त आकर्षक उद्धरण मेरे पास लिख भेजा है जो नीचे दिया जाता है। (जिस लेख का संकेत किया है वह 'यंग इण्डिया' के ता० ११ अक्टूबर १९२८ ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था।)

"हमारे चारों ओर जो घटनाएँ होती रहती हैं—प्रति दिन होती रहती हैं—उन पर यदि थोड़ा भी विचार किया जाय तो हमें प्रतीत हो जायगा कि हमारी इच्छा से भी बढ़ कर एक नियम है जिसका नियन्त्रण सभी घटनाओं पर अपना प्रभाव डालता है, और हमारी दुःख पूर्ण परिश्रम अनावश्यक और व्यर्थ है। हम अपने सीधे सरल और स्वाभाविक कार्यों में ही लगे रहें और अपने आपको आज्ञापालकता के साथ सन्तोष से रक्खें तो हम देवता बन जाते हैं। विश्वास और प्रेम विश्वासमय प्रेम हमें चिन्ता के भारी बोझ से मुक्ति दिलायगा। अरे मेरे भाइयों! ईश्वर है। प्रकृति के मूल में और प्रत्येक मनुष्य की इच्छा से ऊपर (आत्मा) विद्यमान है जिस से हम में से कोई भी जगत् का विनाश न कर सके।"

"यह शिक्षा बलपूर्वक हमें इसलिये सिखायी जाती है कि हमारा जीवन अधिक सरल व सीधा बन सकेगा अपेक्षा उसके कि जितना हम बनायेंगे, संसार जैसा है उसकी तुलना में अधिक सुखदायक बन सकेगा, कलह द्वेष और निराशा से हाथ मलने और दांत किट-किटाने की आवश्यकता ही न रहेगी। हम अपनी बुराइयों को स्वयमेव उत्पन्न करते हैं। हम प्रकृति की इच्छा के विरुद्ध कार्य करते हैं।"

यदि हममें थोड़ा भी विश्वास रहे तो हम ईश्वर को और उसके प्रेम को अपने आस-पास सभी जगह देख सकेंगे।

—यंग इण्डिया : नवम्बर १५, १९२८ ई०

मैं ईश्वर में उतना ही विश्वास रखता हूँ, जितना कि मैं इस बात पर भरोसा रखता हूँ कि यह पत्र मैं लिख रहा हूँ।

—यंग इण्डिया : मार्च ६, १६२२ ई०

ईश्वर तो है चाहे सारा संसार उसे न माने। सचाई तो बनी ही रहती है चाहे जनता उसका समर्थन न करे। वह अपने पर ही दृढ़ है।

—यंग इण्डिया : मार्च ६ १६२२ ई०

मुझे इस बात का दावा है कि मैं विश्वास और प्रार्थना वाला व्यक्ति हूँ, और यदि मेरे टुकड़े टुकड़े भी कर दिये जायं तो भी ईश्वर मुझे वह बल देगा कि जिसके द्वारा मैं उसे नहीं भूलूंगा और यह कहूंगा कि ईश्वर है। मुसलमान कहता है कि ईश्वर है और दूसरा कोई नहीं है। ईसाई भी वही बात कहता है और हिन्दू भी वही, और यदि मैं कह सकूं तो बौद्ध भी वही बात कहता है किन्तु दूसरे शब्दों में। हम सभी अपने अपने ढंग से 'ईश्वर' शब्द का अर्थ प्रकट करते हैं। ईश्वर हमारे इस छोटे से भूमण्डल को ही नहीं सम्हालता वह तो लाखों करोड़ों ब्रह्माण्डों का स्वामी है। हम छोटे छोटे रेंगते हुए जीव जिन्हें उसने उत्पन्न किया है, सर्वथा परवश हैं, हम उसकी महिमा की किस प्रकार प्रतीति कर सकते हैं? उसकी असीम कृपा उनकी अपार दया इतनी अधिक है कि उद्दण्ड होकर मनुष्य उसे भूल जाता है तो भी वह सहन करता है; मनुष्य उसके विषय में विवाद करता है और अपने साथियों के गले तक घोट डालता है। हम ईश्वर की महत्ता का नाप कैसे कर सकते हैं? वह क्षमाशील दिव्य गुणों वाला है।

—यंग इण्डिया : जुलाई १७, १६२४ ई०

मेरा विश्वास केवल ईश्वर में है। मैं मनुष्य पर इसी लिये भरोसा करता हूं कि मैं ईश्वर पर विश्वास रखता हूं। यदि मेरा ईश्वर पर भरोसा न होता, तो मैं टायमन की तरह अपनी जाति से घृणा करने वाला बन जाता। —यंग इण्डिया : दिसम्बर ४,१९२४ ई०

हम चाहे उसे सहस्रों नामों से जानें परन्तु वह सब के लिये एकसा व एक ही है। —यंग इण्डिया : नवम्बर २५,१९२६ ई०

प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की इच्छा को नहीं समझ सकता है। ईश्वर की इच्छा को जानने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये विशेष प्रकार का शिक्षण पाने की आवश्यकता है। —यंग इण्डिया : अप्रैल २७,१९४० ई०

ईश्वर के बिना दूसरा कोई भी पूर्ण नहीं है।

—यंग इण्डिया : अक्टूबर २८,१९२६ ई०

सचाई के अतिरिक्त मुझे किसी अन्य ईश्वर की सेवा नहीं करनी है। —हरिजन : अप्रैल १५,१९३९ ई०

प्रत्येक पुरुष में ईश्वर के लिये विश्वास है, चाहे वह इस बात को जानता न भी हो। क्यों कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप में विश्वास रहता है—वही अनेक गुणों रूप में जाना हुआ ईश्वर है। जितने भी जीव हैं वे सब मिलकर ईश्वर हैं। चाहे हम ईश्वर न भी हों, फिर भी हम ईश्वर के हैं—जैसे कि पानी की एक छोटी सी बूंद समुद्र की है। कल्पना कीजिए कि वह बूंद उड़ कर के समुद्र से लाखों मील की दूरी पर जा पहुँची है। वह विवश है और अपने स्थान से दूर पहुँच गई है

और समुद्र की विशालता और महत्ता का अनुमान नहीं लगा सकती है। परन्तु यदि कोई उसे बतला दे कि वह समुद्र की है तो उसका विश्वास फिर से जग जायगा वह हर्ष से उछल पडेगी और उसमें समुद्र की सम्पूर्ण महत्ता और गौरव की झलक दिखाई देगी।

—हरिजन जून ३, १९३६ ई०

जीता-जागता ईश्वर कहां है?

एक बंगाली पत्र से नीचे लिखा हुआ भाग लिया गया है—

"मुझे उत्पत्ति के नियन्त्रण पर आपका एक लेख पढ़ने का अवसर हुआ, जिसका शीर्षक है "एक नवयुवक की कठिनाई।"

"आपके लेख के प्रधान विचार से तो मै पूर्णतया सहमत हूँ। परन्तु उस लेख मे आपने अपनी भावना ईश्वर के विषय में एक पंक्ति में प्रकट की है। आपने बतलाया है कि आज कल नवयुवकों मे एक फैशन सा बन गया है कि ईश्वर के सम्बन्ध मे कुछ भी सोचना उन्हें भाता नहीं। वे ईश्वर को मानते नही उनमें जीवित ईश्वर के लिये जीवित विश्वास नहीं है।

"परन्तु क्या मै आपसे पूछ सकता हूँ कि आपके पास ऐसा कौन सा प्रमाण (यथार्थ और निर्विवाद) है कि जिससे आप ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध कर सकते है। हिन्दू दार्शनिक या प्राचीन ऋषि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर की वास्तविकता या स्वरूप को वर्णन करने के प्रयत्न में इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि वह अनिर्वचनीय और माया से ढका हुआ है इत्यादि। संक्षेप मे यह कह सकते हैं कि उन्होंने ईश्वर को भारी अभेद्य के आवरण मे छिपा दिया है और सुलझाने के स्थान पर ईश्वर के विषय में जो उलझा हुआ प्रश्न है, उसे और अधिक उलझा

लिया है । मुझे पूरा विश्वास है कि आप या श्री अरविंद या प्राचीन काल के बुद्ध और शंकराचार्य जैसे सच्चे महात्माओं ने ऐसे ईश्वर के अस्तित्व को अच्छी प्रकार समझ लिया होगा, जिसको समझना साधारण पुरुष के मानस का विषय नहीं है ।

"परन्तु हम साधारण व्यक्ति हैं । हमारी स्थूल बुद्धि उस गहराई तक पहुँचने में असमर्थ है, फिर हमें ऐसे ईश्वर से क्या प्रयोजन है जिसकी सत्ता को हम अपने बीच नहीं देख सकते हैं ? यदि वह हम सब का स्वामी और पिता है तो हम उसकी उपस्थिति और सत्ता को अपने हृदय के स्पन्दन के साथ क्यों नहीं अनुभव कर सकते ? यदि वह अपनी सत्ता प्रकट नहीं कर सकता है तो वह मेरे लिये ईश्वर नहीं है । इसके आगे भी मेरा एक प्रश्न है—यदि वह इस जगत का पिता है तो क्या वह अपने बच्चों के दुःख से दुःखी होता है ? यदि ऐसा ही है तो क्या कारण था कि उसने इतना भारी अनर्थ मचा दिया और निराश्रय जनता का भयानक संहार करने वाले भूकम्पों के द्वारा अपने पुत्रों को भारी दुःख पहुँचाया ? अबीसीनिया में रहने वाली सीधी-निर्दोष जाति को उसने क्यों अपमानित किया ? क्या अबीसीनिया के रहने वाले उस के पुत्र नहीं हैं ? क्या वह सर्व शक्तिमान नहीं है ? तब वह इन विपत्तियों को क्यों नहीं रोक सका ? आपने मेरी दीन भारत माता को स्वाधीन करने के लिये शक्तिशाली सत्ता से संग्राम छेड़ा है और ईश्वर से सहायता मांगी है । परन्तु मेरी समझ में आपको वह सहायता प्राप्त नहीं हुई है । और भौतिकवाद की भारी शक्ति ने, जो ईश्वर की सहायता को चाहता ही नहीं है, आप पर विजय पाई है और आपको झुका दिया है । और बल पूर्वक पकड़ करके आपको पीछे रख दिया है । यदि ईश्वर होता तो अवश्य वह आपकी सहायता करता, क्योंकि आपका पक्ष वास्तव में सच्चा था । मुझे इस प्रकार के अधिक दृष्टान्त देने की आवश्यकता नहीं है ।

"इसलिए इस बात पर आश्चर्य करने का कोई अवसर ही नहीं कि आजकल के नवयुक ईश्वर पर विश्वास क्यों नहीं रखते हैं। क्योंकि वे ईश्वर की कल्पना करना नहीं चाहते। उन्हें एक सच्चा और जीवित ईश्वर चाहिये। आपने अपने लेख मे जीवित ईश्वर के लिए सजीव विश्वास का उल्लेख किया है। यदि आप ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिये कुछ ठोस और विश्वास दिलाने वाले प्रमाण देंगे तो मैं आपका बड़ा आभार मानूंगा और मेरे विचार में आप सभी नवयुवकों को एक भारी लाभ पहुँचाने का कार्य करेंगे। मुझे विश्वास है कि जो समस्या पहले से ही बहुत उलझी हुई है उसे आप अधिक रहस्यमय नहीं बनायेंगे और इस प्रश्न पर सच्चा प्रकाश डालेंगे।"

मुझे इस बात का पूरा डर है कि जो कुछ मै लिखने वाला हूँ उस से प्रश्नकर्ता का वह सन्देह दूर नहीं हो सकेगा जिसका कि ऊपर वर्णन किया गया है।

प्रश्नकर्ता का विचार है कि मैने कदाचित् जीवित ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। मै ऐसा दावा नहीं कर सकता। परन्तु मैं जीवित ईश्वर मे जीवित विश्वास अवश्य रखता हूँ—मेरा तो उन बहुत सी वस्तुओं मे जीवित विश्वास है जिनके सम्बन्ध मे वैज्ञानिकों ने मुझे बतलाया है। यह युक्ति दी जा सकती है कि जो कुछ भी वैज्ञानिक कहते है उसको सिद्ध करने के लिये उनके लेखों और विधियों के अनुसार परीक्षा करने पर वे प्रमाणित हो सकते है—वे सभी वैज्ञानिक सचाइयॉ जो कि मान ली गई है सिद्ध की जा सकती है ठीक उसी प्रकार हमारे प्राचीन काल के ऋषियों और सिद्धों ने भी कहा है। उनका कहना है कि कोई भी व्यक्ति उस मार्ग पर चले जिस पर कि वे स्वय चले हैं, तो उसे अवश्य ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। सच बात तो यह है कि हम उस मार्ग को पकडना नहीं चाहते, जिसके द्वारा साक्षात्कार होता है, और जिन्हें साक्षात्कार हो चुका है उनके कथन को मानने के

लिये भी इस उद्यत नहीं है। तराजू के एक पलड़े में आप विज्ञान की उन समस्त खोजों को रख दीजिए और दूसरे पलड़े में ईश्वर के लिये जो जीवित विश्वास है उसे रख दीजिए और फिर तुलना किजिए। आपको प्रतीत हो जायगा कि पहला पलड़ा दूसरे पलड़े से बहुत हल्का है। जो लोग ईश्वर की सत्ता को मानने के लिये उद्यत नहीं है वे बिना शरीर के अन्य किसी की सत्ता में विश्वास नहीं रखते। मनुष्य की उन्नति के लिये इस प्रकार का विश्वास अनावश्यक है। ऐसे व्यक्तियों के समक्ष आत्मा या ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिये यदि भारी से भारी प्रमाण भी रख दिया जाय तो निष्फल सिद्ध होगा। जिस व्यक्ति ने अपने कान बन्द कर लिये है उनको आप प्यारे से प्यारा गान भी नहीं सुना सकते- फिर भी उससे उसकी प्रशंसा करवाना तो बहुत ही दूर की वस्तु है। इसी प्रकार आप उन लोगों को जीवित ईश्वर की सत्ता के विषय में नहीं समझा सकते जो समझना ही नहीं चाहते।

सौभाग्य से यह बात अच्छी है कि एक बड़े प्रमाण में जीवित ईश्वर पर जीवित विश्वास रखने वाले लोग है। उनके विषय में न तो वे युक्ति कर सकते है और न करेंगे। उनके लिये तो ईश्वर अवश्य है। क्या संसार के सभी धार्मिक ग्रन्थ बूढ़ी दादी की कहानियों की तरह के है? क्या ऋषियों व नबियों के अनुभवों को झूठ समझना चाहिये? क्या चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस, तुकाराम, ध्यानदेव, रामदास, नानक, कबीर, तुलसीदास आदि महात्माओं के अनुभव कोई महत्व ही नहीं रखते हैं? राम मोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर और विवेकानन्द के विषय में क्या समझना चाहिये? ये सभी वर्तमान युग के महान विद्वान हैं। मैं जीवित साक्षियों का तो नाम ही नहीं लेता क्योंकि उनका प्रमाण तो ध्यान देने योग्य माना ही नहीं जायगा। ईश्वर के लिये विश्वास पाना श्रद्धा पर आश्रित है। श्रद्धा तर्क के परे की वस्तु है। नि सन्देह जिसे हम साक्षात्कार करते हैं उसकी जड में श्रद्धा वर्तमान है। बिना श्रद्धा के

साक्षात्कार असम्भव है। स्वाभावत ही वस्तुओं मे यह बात होनी चाहिये। उसकी सत्ता का पार कौन पा सकता है ?. मेरी धारणा है कि शारीरिक जीवन मे पूर्ण साक्षात्कार असम्भव है। न यह आवश्यक ही है। एक स्थिर जीवित श्रद्धा ही सब से प्रथम वस्तु है, जिसकी जीव को ऊंची से ऊंची आध्यात्मिक उन्नति पाने मे विशेष आवश्यकता पडती है। ईश्वर हमारे सांसारिक पींजरे से बाहर नहीं है। इसलिये बाह्य प्रमाण यदि कोई है भी तो वह विशेष उपयोगी नहीं हो सकता। हम सदा ही उसे इन्द्रियों के द्वारा पाने के प्रयत्नों मे असफल होंगे, क्योंकि वह इन्द्रियों के परे है। यदि हम दृढता से ठान लें तो उसे जान भी सकते है। परन्तु उस अवस्था मे हमे अपनी इन्द्रियों से अनासक्त होना पड़ेगा। हमारे भीतर ईश्वरीय सगीत की मीठी तान निरन्तर गूज रही है, परन्तु अशान्त इन्द्रियाँ उस प्यारे गीत को सुनने नहीं देतीं। हमने अपनी इन्द्रियों के द्वारा जो जाना है या सुना है उसकी तुलना मे वह गीत उत्कृष्ट और अत्यन्त ऊँची श्रेणी का है।

लेखक यह जानना चाहता है कि यदि ईश्वर दया और न्याय का स्रोत है तो फिर वह उन समस्त कष्टों को और कठिनाइयों को जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है, क्यों रहने देता है ? मैं इसका सन्तोषप्रद समाधान नहीं बतला सकता हू। वह मुझे पराजित और निराश कहता है। मुझ मे इस प्रकार की पराजय, भीरुता और निराशा नहीं है। मेरी कार्य से निवृत्ति जिस कारण से हुई है उसका सवन्ध किसी भी प्रकार पराजय से नहीं है। वह तो आत्म शुद्धि और आत्मोत्थान का एक मार्ग है। यह मै इस बात को प्रकट करने के लिये कहता हू कि प्राय कुछ बातें ऐसी है जो जैसी दिखाई देती हैं वैसी नहीं है। हो सकता है जिन बातों को हम शोक, अन्याय या वैसी ही कोई वस्तु माने हुए है वे वास्तव मे वैसी नहीं हैं। यदि हम सारे संसार की समस्याओं को सुलझा पाते तो हम ईश्वर की समता से खडे हो जाते। समुद्र की प्रत्येक बूंद को

अपने उत्तम स्रोत का अभिमान हो सकता है किन्तु वह समुद्र तो नहीं है। जीवन के इस छोटे से समय में अपने छोटेपन को अनुभव कर हम अपनी प्रातःकाल की प्रार्थना एक गीत गाकर समाप्त करते हैं जिसका ऐसा अर्थ है—'जिसे हम कष्ट कहते हैं वह कष्ट नहीं है और जिसे हम धन कहते हैं वह धन भी नहीं है। ईश्वर को भूलना (या नहीं मानना) सच्चा कष्ट है और ईश्वर को स्मरण रखना (या उसमें श्रद्धा रखना) सच्चा धन है।

—हरिजन: जून १३,१९३६ ई०

यदि ईश्वर अपरिवर्तनीय नित्य जीवित नियम न होता और केवल आवेश में बह जाने वाला होता तो वह अपने क्रोध की अग्नि में उन समस्त लोगों को जला डालता जो धर्म के नाम पर उसको और उसके नियम को नहीं मानते हैं। —यंग इण्डिया: जुलाई १ ,१९२९ ई०

ईश्वर के नियम स्थिर और नित्य हैं और वे स्वयं ईश्वर से पृथक नहीं किये जा सकते।

—यंग इण्डिया: नवम्बर २४,१९२७ ई०

ईश्वर न तो काबा में है और न काशी में ही। वह हम सब में है।

राम, अल्लाह और ईश्वर मेरे लिये एक ही अर्थ रखने वाले विभिन्न शब्द हैं। —यंग इण्डिया: जनवरी २२,१९२५ ई०

सचाई ईश्वर है और झूठ है ईश्वर को न मानना।

—यंग इण्डिया: दिसम्बर १०,१९२५ ई०

मुझ से कोई यह न पूछे कि प्रार्थना क्या है और ईश्वर कौन है। प्रार्थना और ईश्वर मे विश्वास ये दोनों श्रद्धा के उत्कृष्ट कार्य है।

—यग इण्डिया नवम्बर १६२६ ई०

ईश्वर है या नहीं ?

जब मै दक्षिण मे यात्रा कर रहा था मै हरिजनों और दूसरे लोगों से मिला जिन्होंने ईश्वर पर विश्वास नहीं रखने का वहाना किया। एक स्थान जहाँ हरिजनों की सभा एकत्र थी सभा-पति ने वहाँ उस मन्दिर की छाया के नीचे ही नास्तिकता के पक्ष मे एक भाषण किया। उस मन्दिर को हरिजनों ने अपने सचित धन से बनाया था। परन्तु हरिजन भाइयों पर जो अत्याचार हो रहे थे उन्हें देख कर उसके हृदय मे क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, उसने उस करुणामय भगवान् की सत्ता पर सन्देह प्रकट किया और युक्ति दी कि उसके रहते हुए ऐसी निर्दयता और क्रूरता कैसे फैल सकती है। शायद इस तरह के सन्देह के लिये वहाना अवश्य था।

परन्तु यहाँ एक दूसरे ढग के अविश्वास से भरे कथन का उद्धरण दिया जाता है जो कि एक दूसरे स्थान से प्राप्त हुआ है—

"क्या आप इस बात को नहीं सोचते है कि ईश्वर सचाई या वास्तविकता पर पहले से ही भरोसा कर लेने पर हमारी खोज का सारा प्रवाह ही शिथिल हो जायगा और इस प्रकार एक बडा रोड़ा खडा हो जायगा और हमारे जीवन का विशेष ध्येय पूर्ण न हो सकेगा। उदाहरण के लिये लीजिए आप किसी नैतिक सचाई को आधार माने हुए है—परन्तु हम खोज मे है और जब तक हम यथार्थता को न पालें किस प्रकार दृढ़ता से और बल पूर्वक से कह सकते है कि नैतिकता के लिये कोई विशेष नियम सचाई है अथवा केवल वही हमे सहायता देगा ?"

कोई भी खोज विना किसी आधार भूत कल्पना के चल ही नहीं सकती। यदि हम कुछ भी मान कर न चलें तो हम कुछ भी नहीं पाते है। सृष्टि के आरम्भ से बुद्धिमान और मूर्ख दोनो प्रकार के लोग इस कल्पना को लेकर चले है कि यदि हम है तो ईश्वर है और यदि ईश्वर नहीं है तो हम भी नहीं है। और क्योंकि ईश्वर मे विश्वास रखना मानवता के साथ लगा हुआ है, ईश्वर की सत्ता सचाई के रूप मे मानी जाती है, यह बात कि सूरज है उस से भी अधिक निश्चित मानी जाती है। उस सजीव श्रद्धा ने संसार की अनन्त समस्याओं को सुलझा दिया है। उसने हमारे कष्टों को न्यून कर दिया है। यह जीवन काल मे हमें सहारा देती है और मृत्यु के समय शान्ति। सचाई की खोज ही मे आनन्द आता है और उसी श्रद्धा के कारण वह बहुत महत्त्व रखता है। परन्तु सचाई की खोज ईश्वर की खोज है। सचाई ही ईश्वर है। ईश्वर है क्योंकि सचाई है। हम खोज के लिये निरन्तर फंसते है क्योंकि हमे विश्वास है कि सचाई है और वह सपरिश्रम खोज द्वारा पाई की जा सकती है—अत्यन्त और जिज्ञासा पूर्ण खोज के नियमों से वह मिल सकती है। इतिहास मे उस प्रकार की खोज करने वाला असफल हुआ है ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं मिलेगा। नास्तिकों ने भी ईश्वर की सत्ता का निषेध किया है परन्तु सचाई को माना है। उन्होंने जो चालाकी की है वह ईश्वर को दूसरा नाम देने मे की है—परन्तु वह नया नाम नहीं है। उसके नामों की गणना ही नहीं है। सचाई उन मे सब से बड़ा नाम है।

जो बात ईश्वर के लिये सही है, वही परन्तु कुछ अंश तक कुछ नैतिक सचाई की कल्पना मे भी सही है। वास्तव मे वे ईश्वर या सचाई के विश्वास मे लागू है। उस से दूर भागने वाले पुरुष भारी कष्टों मे फंसते है। कार्य मे लाने की कठिनाई को अविश्वास द्वारा गड़बड़ा नही देना चाहिये। हिमालय की चोटी पर सफलता से पहुंचने

का सही उपाय भी अवश्य है। उसको क्रिया मे लाने की कठिनाई इस बात को सिद्ध नहीं करती है कि उस पर चढ़ना सम्भव नहीं है। उस से तो उपाय ढूढने के कार्य मे उत्साह और तत्परता उत्पन्न होती है। ईश्वर या सचाई की खोज की कूच बहुत ऊची बात है उसके समुख हिमालय की चोटी पर चढने की तैयारिया कुछ भी नहीं है। उसका कार्य तो हिमालय पर चढने के सहस्रों प्रयत्नों से भी कठिन है। हमारे हृदय मे उसके लिये उत्साह नही है तो इसका कारण है हम मे श्रद्धा की शिथिलता। हम यह मान लेते है कि हमारी स्थूल आंखें जो कुछ देखती है वही सच्चा है और वास्तविक सचाई की ओर मन नहीं जाता। हम जानते है कि दृश्य पदार्थ भी धोखा देते हैं और फिर भी तुच्छ वस्तुओं के लिये मरते है। यदि हम छोटी बातों को जान लें तो प्राय आधी लडाई जीत ली जाती है। इस मे ईश्वर या सचाई की आधी से भी अधिक खोज हो जाती है। जब तक हम छोटी छोटी बातो से विमुख न होंगे तब तक हमे बडी बडी खोज के लिये अवकाश ही नहीं मिलेगा। क्या उसकी खोज केवल हमारे अवकाश के घटों मे होनी चाहिये ?

हरिजनों से काम करने वालों को चाहिये कि वह समझ लें कि उनका अछूतोद्धार का बीड़ा उस बडी भारी खोज का एक भाग है, चाहे हम इसे समझें या नहीं। अस्पृश्यता एक भारी झूठ है। हम ने इसे अपने आप के लिये सिद्ध कर दिया है नहीं तो हम इस बात का बीडा ही नहीं उठाते। हम परिश्रम द्वारा और सफलता की उन सभी नियमों को जो प्राय: अनेक बार में हमारे सम्मुख उपस्थित होते है पूर्णतया अपनाने पर ही सचाई का पाठ दूसरों को सिखा सकते है।

—हरिजन : सितम्बर १२, १६३४ ई०

शब्द 'सत्य' की रचना 'सत्' से हुई है जिस का अर्थ है—होना। और कोई भी पदार्थ बिना सत्य के न तो है और न हो ही सकता है। यही कारण है कि 'सत्' या 'सत्य' ही ईश्वर का प्राय सब से अधिक महत्व वाला नाम है। वास्तव में यह कहना अधिक उचित होगा कि सत्य ही ईश्वर है, अपेक्षा यह कहने के कि ईश्वर सत्य है। परन्तु जैसे हम अपना काम बिना शासक या प्रधान के नहीं कर सकते ऐसी ही भावना से ईश्वर के नाम राजाधिराज या सर्वशक्तिमान आदि हैं और प्राय अधिक प्रसिद्ध रहेंगे। और भी गम्भीर विचार करने से पर यह बात समझ में आ जायगी कि केवल 'सत्' या 'सत्य' ही यथार्थ और पूर्ण अर्थ देने वाला ईश्वर का नाम है।

और जहां 'सत्य' है, वहां ज्ञान भी है विशुद्ध ज्ञान। जहां सत्य नहीं है वहां सच्चा ज्ञान भी नहीं है। यही कारण है कि 'चित' शब्द या 'ज्ञान' ईश्वर के नाम से लगा हुआ है और जहां सच्चा ज्ञान है वहां सदा ही आनन्द है। शोक के लिये वहां स्थान नहीं है। और जिस प्रकार सचाई नित्य है, उसी प्रकार उससे प्रकट होने वाला आनन्द भी नित्य है। ईश्वर इसी लिये सत्-चित-आनन्द स्वरूप कहलाता है; अर्थात् वह सत्ता जिस में सचाई, ज्ञान और आनन्द तीनों का सम्बन्ध है।

हमारे जीवन का एक मात्र उद्देश्य यही है कि सचाई की तत्परता से उपासना की जाय। हमारे सभी कार्य व्यवहार सचाई के लिये ही होने चाहियें। सचाई ही हमारे जीवन का श्वास होना चाहिये। जब एक बार कोई यात्री अपनी पवित्र यात्रा में उस सीमा तक पहुंच जाता है, तो ठीक ढंग से रहने के अन्य सब साधन बिना प्रयत्न के उत्पन्न हो जाते हैं और उनके अनुसार कार्य अपने आप होने लगता है। परन्तु बिना सत्य के जीवन में किसी भी प्रकार के सिद्धान्तों पर दृढ रहना असम्भव है।

साधारणतया सत्य के नियम के आचरण मे लाने का अर्थ, सच बोलने तक ही मान रखा है। पन्तु हम लोग अपने 'आश्रम' मे 'सत्य' का अर्थ बहुत व्यापक मानते है। सचाई तो मन की, वचन की और कर्म की होनी चाहिये। जिस व्यक्ति ने सत्य को पूर्णता से क्रिया मे ले लिया है उसके लिये फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है। क्यों कि सारा आवश्यक ज्ञान उस मे समाविष्ट है। जो कुछ भी उससे नहीं आता है, वह 'सत्य' नही है, और इसी लिये वह यथार्थ ज्ञान भी नहीं है, और बिना सच्चे ज्ञान के हृदय को शाति नही मिल सकती। यदि हम एक बार सचाई की इस कभी भी धोखा न देने वाली परीक्षा का उपयोग सीख ले, हम तुरन्त इस बात को जानने के योग्य हो जानगे कि कौन सी वस्तु होने योग्य है, कौनसी वस्तु देखने योग्य है और कौन सी वस्तु पढने योग्य है।

परन्तु कोई व्यक्ति इस सचाई को कैसे समझ सकता है जो कि दार्शनिकों के पारस पत्थर या कामधेनु के सदृश है? 'भगवद्गीता' उत्तर देती "कि निरन्तर अभ्यास करने और सासारिक आक्रमणों से वैराग्य रखने पर प्राप्त हो सकती है।" इस प्रकार के अभ्यास के करने पर भी एक व्यक्ति को जो पदार्थ सच प्रतीत होता है वही एक दूसरे पुरुष को झूठा प्रतीत होता है परन्तु किसी भी जिज्ञासु को उससे घबराना नही चाहिये। जब तत्परता से प्रयत्न होगा यह बात अच्छी प्रकार समझ मे आजायगी कि जो जो हमे विभिन्न प्रकार की सचाइया प्रतीत होती है, वे वास्तव मे एक ही पेड की अनेक पत्तियों के समान है। क्या विभिन्न व्यक्तियों को ईश्वर विभिन्न रूपों मे दिखाई नहीं देता है? फिर भी हम जानते है कि वह तो एक ही है। लेकिन सचाई तो ईश्वर का यथार्थ गुण है। इस लिये प्रत्येक मनुष्य जो सचाई के अपने अपने प्रकाश मे ही आचरण मे लाता है, किसी भी प्रकार भूल मे नहीं है

वास्तव में ऐसा करना प्रत्येक का कर्तव्य है। इस प्रकार से सचाई का आचरण करते हुए यदि किसी प्रकार की भूल हो जायगी तो वह अपने आप ही सुधर जायगी। क्योंकि सचाई की खोज में 'तपस्या' आ जाती है अर्थात कष्ट उठाने पड़ते हैं। कभी कभी मरने तक की स्थिति आ जाती है। इस में स्वार्थ के लिये कोई भी अवकाश नहीं रह सकता। सचाई के लिये इस प्रकार की निःस्वार्थ खोज में कोई भी मनुष्य अपने धैर्य को एक लम्बे समय तक स्थिर रख सकता है। झूठा मार्ग ग्रहणकरने पर मनुष्य ठोकर खाता है, फिर वह सीधा रास्ता ग्रहण करता है। इस लिये सचाई का मार्ग सच्ची भक्ति ही है। यह वह चमत्कार है जिसके द्वारा मृत्यु भी नित्य जीवन की ओर ले जाने वाली हो जाती है। इस सम्बन्ध में हमें हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, रामचन्द्र, इमाम हसन और इमाम हुसैन तथा ईसाई पैगम्बरों आदि के जीवनों और आदर्शों पर विचार करना चाहिये। कितना अच्छा हो यदि हम सभी जवान व वृद्ध स्त्री और पुरुष जाग्रत अवस्था में जो कुछ भी करें यानी खाएं, पीएं, खेलें काम, करें आदि यह सभी करते हुये भी सर्वथा सचाई की खोज में लग जाएं और अन्त में पवित्र गम्भीर निद्रा हमें अपनी गोद में सुला ले। ईश्वर मेरे लिये सचाई के रूप में एक अमूल्य निधि है; वह सभी के लिये ऐसा ही बन जाय यह मेरी हार्दिक कामना है।

—यंग इण्डिया, जुलाई ३०, १९२१ ई०

ईश्वर और कांग्रेस

एक मित्र लिखते है,

"एक ऐसी समस्या है जिसका रहस्य समझने के लिये मै आप के पास पहुचने की इच्छा कर रहा हूँ। वह 'ईश्वर' शब्द के विषय मे है। एक राष्ट्रिय कार्य कर्ता के रूप मे मुझे उस लेख के विरुद्ध अभी 'यग इण्डिया' के एक अक मे प्रकाशित हुआ है, कुछ नहीं कहना चाहिये मै उन पाठकों के समक्ष इसे (राम नाम को) पेश करता हूँ, जिसका आवश्यकता से अधिक पढने के कारण से' मानसिक प्रकाश चकाचौंध नही हो गई है और जिनकी श्रद्धा मन्द नही पड गई है। जीवन की राह मे ज्ञान द्वारा अनेक चढाव उतार होते रहते है, परन्तु शका और परीक्षा के अवसर पर वह (ज्ञान) हमे बुरा धोखा देता है।"—यग इण्डिया · जनवरी २२, १६१५ ई० पृ० २७) क्यो कि यह आप की व्यक्तिगत श्रद्धा वाली स्वीकृति है और मुझे यह भी विदित है कि समय आने पर आवश्यकतानुसार शुद्ध हृदय वाले नास्तिकों की प्रशसा करने मे भी आप नही चूके है अपने 'नीति धर्म' के ये वाक्य देखिये—'हम वहुत से ऐसे दुराचारी मनुष्यों से मिले जिन्हे अपनी धार्मिकता का वडा अभिमान था, परन्तु वे वहुत ही बुरी नीति से गिरे हुये कार्य करते थे। दूसरी ओर स्वर्गीय श्री ब्रेडला जैसे पुरुष भी है, जो वडे धार्मिक और नैतिक होते हुए भी अपने आप को नास्तिक कहने मे गौरव समझते है। अव 'राम नाम' की श्रद्धा पर आइए जो कि हमे सकट और प्रलोभन के अवसरों मे वचा सकती है। मै बुद्धिवादी फ्रेन्सिस्को फेरर के वलिदान का वर्णन करता हू—उसे स्पेन के वारसेलोना स्थान पर १६०६ ई० मे उन लोगों ने मार दिया जो जेसस के नाम (उनके राम नाम) पर विश्वास रखते थे। धर्म युद्ध को ही लीजिये—उन में नास्तिकों को जला डाला और उनके हाथ पाव काट दिये गए। यहूदियों को

लीजिये—उन में पशु और कभी कभी मनुष्यों तक की बलि दी गई। ये सब कार्य ईश्वर की महत्ता और उसके नाम को बढ़ाने के उद्देश से किये गये है। यह बात तो प्रसङ्ग वश कह दी गई है।

"राष्ट्रिय सेवक के नाते फिर भी मैं समझता हूँ कि मुझे आपका ध्यान उस आपत्ति की ओर खींचना चाहिये जो श्री० ने (अपने समाज वादी मित्र की ओर से) आपके इस कथन पर खडी की है कि केवल ईश्वर से डरने वाले इन्सान ही सच्चे एन० सी० ओ'ज बन सकते है। और मैं आपको अपने उस वचन का स्मरण करवाता हूँ जिस मे आपने यह कहा था कि राष्ट्र-सेवा के कार्य मे किसी भी व्यक्ति को अपने धार्मिक विचारों के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं।—('यंग इण्डिया' मई ४.१९२१ ई० पृ० १२८-३६) उस समय की अपेक्षा अब वह आपत्ति अधिक प्रबलता से उठाई जा सकती है, क्योंकि कांग्रेस के स्वयं सेवकों को जो शपथ और प्रतिज्ञायें लेनी पड़ती है उनमे ईश्वर का निर्देश है। वे इस प्रकार आरम्भ होते है. "मैं ईश्वर को साक्षी रख करके "

अब आपको तो विदित है ही कि बौद्ध (जैसे बर्मी—अब भारतीय और आपके मित्र प्रो० धर्मानन्द कोसम्बी) और जैन और बहुत से अन्य भारतीय जो इन प्राचीन माने हुए सम्प्रदायों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते उनका विश्वास प्रकृति मे है। यदि ये लोग कांग्रेस के स्वयसेवकों मे भर्ती होना चाहे तो क्या यह सम्भव है कि जिस देवता को वे नहीं मानते उसी के नाम से आरम्भ होने वाली प्रतिज्ञा को भली भाति समझ-बूझकर ग्रहण करें? यदि ऐसा नहीं हो सकता तो क्या यह बात उचित है कि किसी भी व्यक्ति को कांग्रेस की सेवा से केवल धार्मिक विचारों के कारण वञ्चित रखा जाय? मेरी तो प्रार्थना है कि ऐसे लोगों को भरती करने के लिये एक हृदय सबन्धी वाक्य जोड़ दिया जाय, उसमें ईश्वर के नाम (जिसे कि कुछ व्यक्ति नत देवता मे आस्था रखने वालों को भी आपत्ति है-उदाहरण रूप से फ० फर्स) के स्थान पर पवित्र प्रतिज्ञा को रख दिया जाय, या जो

हृदय से 'ईश्वर' के लिये आपत्ति करने वाले हैं उनके लिए 'ईश्वर' के स्थान पर हृदय शब्द प्रयुक्त कर दिया जाय—या सब से अच्छी बात तो यह होगी कि एक शुद्ध हृदय की प्रतिज्ञा जिसमे 'ईश्वर' का नाम ही न हो और हृदय से या बिना उसके जो आना चाहें उन्हें बिना भेद-भाव के सम्मिलित कर लिया जाय। मै आपके पास इसलिये पहुँचा हूँ कि आप प्रतिज्ञा के निर्माता हैं और अभी कॉंग्रेस के अध्यक्ष हैं। एक बार मैंने इस से पूर्व भी ऐसा किया था। मुझे भय है कि मेरा वह पत्र ऐसे समय पर पहुँचा होगा कि आप उस पर ध्यान नहीं दे सके होंगे। वह आपकी १६२२ ई० की ऐतिहासिक गिरफ्तारी, जो कि साबरमती मे हुई थी, उसके पहले की बात है।

जहाँ तक हार्दिक आपत्ति का प्रश्न है, यदि उचित समझा जाय तो कॉंग्रेस की प्रतिज्ञा से जिसका निर्माता होना मेरे लिये गौरव का विषय है, ईश्वर का नाम दूर किया जा सकता है। यदि ऐसी आपत्ति उसी समय उठाई जाती तो मै तुरन्त उसे स्वीकार कर लेता। भारत जैसे देश में इस प्रकार की आपत्ति की मुझे आशा न थी यद्यपि चारवाकों का मत उल्लिखित अवश्य है, परन्तु मैं नहीं समझता कि उसके कोई भक्त हैं। मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता कि बौद्ध और जैन नास्तिक या जडवादी हैं। जैन तो हो ही नहीं सकते। जिन लोगों का आत्मा पर विश्वास है और जो मानते हैं कि वह शरीर के नाश होने पर भी अपनी एक पृथक स्वतन्त्र सत्ता रखता है, वे नास्तिक कभी नहीं हो सकते। हम सभी भिन्न भिन्न ढंग से ईश्वर की प्रार्थना कर सकते हैं। अगर हम सभी भिन्न भिन्न रूप से ईश्वर की परिभाषा करने लगें, तो इतनी एकत्रित हो जायगी जितने स्त्री पुरुष हैं। परन्तु उन सब परिभाषाओं की भिन्नता मे भी एक प्रकार की एकता अवश्य है, जिसमे किसी प्रकार की भूल नहीं है। क्योंकि आधार तो एक है। ईश्वर वह अनिर्वचनीय सत्ता है, जिसको हम सभी अनुभव करते हैं, परन्तु जिसको हम जानते नहीं हैं। यद्यपि चार्ल्स ब्रैडले ने अपने आपको नास्तिक कहा है, परन्तु बहुत से ईसाई उसे ऐसा नहीं मानते।

जब कि बहुत से ईसाई केवल वाणी से ही अपने आपको ईसाई कहने का दावा करते हैं, ब्रेडले में ईसाई पन के सभी गुण थे। मुझे भारत के उस अच्छे मित्र की अर्थी के साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उस अवसर पर मैंने अनेक पादरियों को देखा है। वास्तव मे उस जुलूस मे अनेक मुसलमान व बहुत हिन्दू थे। वे सभी ईश्वर मे विश्वास रखते थे। ब्रेडले का ईश्वर को नहीं मानना यह अर्थ रखता था कि ब्रेडले को ईश्वर का जो स्वरूप ज्ञात था जैसा वर्णन किया जाता था, वैसा उसका वर्णन करना उसे इष्ट न था। उस समय के धार्मिक विचारों का उसने प्रबल विरोध किया। वह इस बात का कट्टर विरोधी था कि कहना कुछ और करना कुछ। मेरे लिये ईश्वर सचाई और प्रेम है; ईश्वर अच्छाई और नीति है, ईश्वर निर्भयता है, ईश्वर प्रकाश और जीवन का स्रोत है और फिर भी वह इन से ऊपर और परे है। ईश्वर हृदय है, यहाँ तक कि वह नास्तिकों का नास्तिकपन है। क्योंकि अपने अपार प्रेम मे ईश्वर नास्तिक को भी रहने को अवसर देता है। वह हृदयों की जांच करने वाला है। वह वाणी और तर्क दोनों से ऊँचा है। वह हमे और हमारे हृदयों को हम से भी अधिक जानता है। वह हमारे शब्दों पर काम नहीं करता है क्योंकि उसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि प्राय जैसा हम कहते है वैसा हमारा विचार नही है—कुछ तो इसे जानते है और कुछ नहीं भी जानते है। उन लोगों का वह वैयक्तिक ईश्वर है, जिन्हें उसके व्यक्तिगत दर्शन की अभिलाषा है। उन लोगों को वह साकार दर्शन देता है, जो उसे छूना चाहते है। वह अत्यन्त पवित्र सत्ता है। वह केवल उन लोगों के लिये है, जिनमें श्रद्धा है। वह सब मनुष्यों को सभी तरह से दीखता है। वह हम मे है, फिर भी हम से बाहर और ऊपर है। एक मनुष्य कॉग्रेस से 'ईश्वर' शब्द को पृथक कर सकता है, परन्तु उसमे उसकी सत्ता को पृथक् करने की शक्ति नहीं है। शुद्ध हृदय की प्रतिज्ञा क्या है, क्या यह वही वस्तु नहीं है, जैसा कि कहा जाय ईश्वर

के नाम पर ? सचमुच 'अन्तरात्मा' एक छोटा, खींचतान कर बनाया हुआ शब्द है जिस का अभिप्राय ईश्वर से है। क्योंकि उसके नाम पर बडी बडी अनैतिकता और भयंकर क्रूरता होती है, इसलिये उसकी सत्ता मिट चुकी है—यह कैसे माना जा सकता है ? वह लम्बे समय तक दुःखों को सहन करने वाला है। वह धैर्य वाला है परन्तु वह भयानक भी है। वह इस ससार मे और आगे के ससार मे एक सा शासन करने वाला है। हमारे साथ वह वैसा ही व्यवहार करता है जैसा कि हम अपने पड़ोसियों के साथ करते है—चाहे वे मनुष्य हों चाहे पशु। अज्ञान को वह क्षमा नहीं करता। इतना होने पर भी वह सदा ही क्षमाशील है, क्योंकि वह सदा ही हमे प्रायश्चित्त के लिये अवसर देता है। वह बडा भारी उदार शासक है, क्योंकि उसने भलाई और बुराई का चुनाव हमारे हाथों मे सौंप रखा है। वह क्रूरतम शासक भी है, क्योंकि वह प्राय. हमारे मुंह का प्याला भी छीन लेता है और हमे प्रतिक्षण कार्य मे स्वतन्त्र होने के नाम पर भी इतनी ही स्वतन्त्रता देता है क हम उसके हाथ के खिलौना बने रहे। इसी लिये हिन्दू-धर्म कहता है कि यह उसका खेल है, लीला है, माया है। हम नही है—केवल वही है। और यदि हम है तो सदा ही उसकी प्रशसा के गीत गाना ही चाहिये। चलो उसकी बन्सी की तान के साथ साथ नाचे—और सब भला ही होगा।

—यग इण्डिया मार्च ५.१९२५ ई०

सत्य एक ही होता है

पोलेण्ड का एक प्रोफेसर लिखता है:—

"मैं बडी प्रसन्नता से आपके रसमय लेखों को यग 'इण्डिया' मे पढ़ रहा हू और आपके समक्ष सचाई प्रकट करना चाहता हू कि उनमें वह ओज भरा पडा है जो न केवल आपके देश को ही परन्तु सम्पूर्ण

जगत् को लाभ पहुँचाता है। और क्यों कि आपको इतनागहरा आध्यात्मिक अनुभव है, क्या मै आपसे एक प्रश्न पूछ सकता हू। जिसका उत्तर संभव होतो आप 'यग इण्डिया' मे देने की कृपा करें ? यह एक वहुत ही महत्व का मौलिक प्रश्न है, जिसका उत्तर आपसे मिलना वहुत वडा महत्व रखता है। क्या आप इस वात को स्वीकार करते है कि मनुष्य के विचारों मे एक प्रकार की विशुद्ध सचाई है, उदाहरणार्थ ईश्वर को और प्रार्थना को ही लीजिए, जिन मे कहा जा सकता है कि हम पूर्णतया अपरिवर्तनीय सत्य पर पहुच चुके है ? क्या आप यह भी स्वीकार करते है कि आपके किसी विशेष अनुभव ने आपके पहले विचार को परिवर्तित कर दिया है दृष्टान्त रूप से कुछ भयानक पशुओं को जान से मारदेने के अधिकार के सवन्ध मे ? अव मेरा विशेष प्रश्न यह है कि आप कौन सी विशेष वातों पर अपने विचार मे परिवर्तन करते है ? और ये परिवर्तन कैसे विश्वास दिला सकते है कि जो वास्तव मे है, उसकी सचाई वनी रहेगी ही ? समयानुसार सम्मतिमे परिवर्तन करना पडता है उसमे और उन आवश्यक वातों मे जिनमे वास्तविक सचाई है, हम किस प्रकार भेद कर सकते है ? क्या आप वता सकते हैं कि कौन कौन सी वस्तुओं मे हम परिवर्तन कर सकते हैं और कौन कौन सी चीजें अपरिवर्तित रहती है ? क्या प्रत्येक देश की या जातिकी स्वतन्त्रता वास्तव मे उन मौलिक सचाईयों मे से एक है, या क्या कुछ ऐसी जातिया भी है जिन मे जन्म से ही अपने शासन के करने की योग्यता नहीं है, और क्या कुछ ऐसी भी है कि जिनमें जन्म सेही ऐसी अयोग्य जातिओं पर राज्य करने की योग्यता विद्यमान है, जैसा कि जर्मन लोगो का दावा है कि वे अन्य जातियों पर शासन करने की योग्यता रखते है और इस तरह वे अपनी शासन करने की महत्वाकांक्षाओं को न्याययुक्त ठहराते है ?"

मूल पत्र जो कि मुझे लेखक से मिला है, उसके अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करने के लिये मैंने कहीं कुछ शब्द परिवर्तित कर दिये हैं। मैं अपने मे उन गुणों का दावा नहीं करता हूँ, जिनका उल्लेख लेखक ने किया है। मै एक मनुष्य के नाते उनके प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करूँगा। मेरा अपना यथार्थ दावा सीधा और सच्चा है। मै नम्र हूँ परन्तु सचाई का दृढ जिज्ञासु हूँ। मैं अपनी खोज मे अपने साथियों पर पूरा विश्वास रखता हूँ जिससे मै अपनी भूलों को जान सकूँ और सुधार सकूँ। मै स्वीकार करता हूँ कि मैंने कई बार अपने अनुमानों और निर्णयों मे भूलें की है। उदाहरण के लिये मै बताता हूँ कि कुछ अधूरे ऑकडों से ही मैंने यह समझ लिया था कि खेड़ा के लोक असहयोग के लिये उद्यत हैं, लेकिन मुझे तुरन्त ही प्रतीत होगया कि मेरा अनुमान सर्वथा भ्रमपूर्ण था और मैंने जान लिया कि वे लोक असहयोग नही कर सकते क्यों कि उन लोकों को इस बात का ज्ञान ही न था कि स्वेच्छा पूर्वक नियम पालना किस प्रकार होता है, जिसको कि हम पीडा जनक कह सकते है परन्तु नीति विरुद्ध नहीं। तुरन्त ही मैंने जॉच की और मै रुका। बारडोली के सत्याग्रह की घोषणा करते समय भी मैंने वैसी ही भूल की थी। मैंने इस बात का विश्वास कर लिया था कि उस प्रदेश के लोक पर्याप्त जाग्रत हो चुके है और उस आन्दोलन के उत्साह मे असहयोग की आवश्यकता को अनुभव कर चुके है। अल्टी मेटम (अन्तिम घोषणा) देने के पश्चात् चौबीस घन्टे मे ही मैंने अपनी भूल जान ली और अपने पैर लौटा लिये। जब जब मैंने अपनी भूलों को सुधारा, मुझे कोई गम्भीर हानि नहीं हुई। परन्तु इसके प्रतिकूल असहयोग की भूल भूत सचाई पहले से अधिक समझ मे आगई और देश को किसी भी प्रकार की कोई स्थिर हानि नही हुई।

कुछ भयकर पशुओं को विशेष परिस्थितिओं मे मार डालने के संबन्ध मे जो मैंने अपने लेखों मे समझा कर बतलाया है उसके विषय

में मैंने अपनी सम्मति में परिवर्तन किया हो ऐसा तो मुझे स्मरण नहीं होता। जहाँ तक मुझे अपनी सम्मति का स्मरण है, मैंने उन्हीं विचारों को धारण किया हुआ है, जिन्हें उन लेखों मे मैंने प्रकट किया है। फिर भीउसका यह अर्थ नहीं है कि उन सम्मतियों मे परिवर्तन नहीं हो सकता। मै इस वात का दावा नहीं करता हूँ कि मुझे अचूक प्रेरणा या ईश्वरीय ज्ञान होता है। जहाँ तक मेरा अनुभव है मनुष्य का किसी वात के लिये सर्वथा निर्भ्रान्त होने का दावा अनुचित है, यह देखते हुए कि ईश्वरीय प्रेरणा तभी होती है जव सभी प्रकार का भेद-भाव मिट जाता है, और कभी कभी तो ऐसे अवसर आजाते है जव यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि मनुष्यका सांसारिक द्वन्द्वो से ऊचा होने का दावा ठीक है या नहीं। इस लिये निर्भ्रान्त होने का दावा करना करना हमेशा ही वहुत भयकर होगा। संसार के वडे वडे आदमियों का सचित अनुभव हमे प्राप्त हो रहा है और आगे भी सदा होता ही रहेगा। इसके अतिरिक्त मौलिक सचाइयाँ वहुत नहीं हैं, परन्तु मूलभूत सचाई तो केवल एक ही है—वह तो स्वयं 'सचाई' ही है—या दूसरे शब्द मे वह अहिसा के नाम से विख्यात है। अल्पज्ञ मनुष्य असीम सचाई और प्रेम को, पूर्णतया नहीं समझ सकता। परन्तु हम अपने मार्ग दर्शन के लिये पर्याप्त जानते है। उसे कार्य रूप देते समय हमसे भूल होगी और कदाचित् भारी भूल होगी। परन्तु मनुष्य अपने आप पर शासन करने वाला प्राणी है और जैसे अपने पर शासन करने मे भूल की सभावना है, वैसे ही उसको दूर करने के लिये भी उसमे सदा शक्ति विद्यमान है। मैं नहीं कह सकता कि इस से मेरे लेखक को सन्तोष हो चुका होगा। परन्तु उसे सन्तोष हो या न हो मुझ मे इससे अधिक सन्तोषजनक उत्तर देने की शक्ति नहीं है। अन्त में प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए अपने-आप एक नियम वन जाना चाहिये। उसके लिये अनिवार्य वात तो यह है कि उसे सदा ही ईश्वर से डरते रहना चाहिये

और इसीलिये निरन्तर अपने मन को पवित्र बनाते रहना चाहिये। मनुष्य को मनुष्य बनने के लिये हिन्दुओं के कथनानुसार 'द्विज' अर्थात् दो बार जन्म लेने वाला बनना चाहिये और ईसाइयों के धर्म के अनुसार 'फिर से उत्पन्न हुआ' होना चाहिये। प्रश्नकर्ता के अन्तिम प्रश्नों का उत्तर सरलता से दिया जा चुका है। वास्तविक बात तो यह है कि उनके प्रश्नों के उत्तर तो ऊपर की विवेचना से ही स्पष्ट हो चुके हैं। मैं समझता हूँ कि प्रत्येक देश की स्वाधीनता उसी अर्थ में और उसी सीमा तक सचाई है, जिस अर्थ व सीमा तक प्रत्येक मनुष्य की स्वतन्त्रता एक सचाई है। इस लिये किसी भी देश या जाति मे उत्पन्न होने से ही आत्मशासन की आयोग्यता नही है और इसीलिये दूसरी जातियों पर शासन करने की भी योग्यता नही है। निःसन्देह मेरा प्रश्नकर्ता सच्चे हृदय से समझता है कि जरमन लोगों का दावा है कि उनमे दूसरी जातियों पर राज्य करने की ईश्वर-दत्त योग्यता है। परन्तु यदि कुछ जर्मन साम्राज्य-वादी है तो कुछ जर्मन ऐसे भी हैं जो उदारता से प्रजातन्त्र को स्वीकार करते है; जिन के विचार मे यदि अपने ही राज्य का प्रबन्ध शान्ति से होता रहे, उसी मे सन्तोष है।

—यंग इण्डिया : अप्रेल २१,१९२७ ई०

कुछ आपत्तिओं के उत्तर

एक संवाददाता ने 'नवजीवन' के लिये एक भयप्रद पत्र भेजा है, जिसमे उसने मेरे कई सिद्धान्तों पर आपत्तियाँ की है और विशेषतया मेरे जीवन के रहन-सहन के विषय मे आपत्तियाँ उठाई है। 'यंग इण्डिया' के पाठकों के लाभ के लिये मेरे एक मित्र ने मेरे उत्तर का भाषान्तर किया है। पत्र का अनुवाद नहीं दिया गया है, क्योंकि उत्तर के द्वारा ही पाठकों को यह बात विदित हो जायगी कि वे कौनसी आपत्तियां हैं।

सदाचार रेखा गणित की रेखा की भांति सरल वस्तु नहीं है। यह उस सुन्दर वृक्ष के समान है, जिस की असंख्य पत्तियों मे से एक भी किसी दूसरी से सर्वथा नहीं मिलती। यद्यपि कि वे एक बीज और एक ही पेड से उत्पन्न हुई है, फिर भी रेखा गणित की आकृतियों की भांति वो पेड़ के किसी भी भाग की कहीं भी एकरूपता नहीं है। और फिर भी हम जानते है कि बीज, पत्तियां और डालियां एक ही हैं और वही है। हमे यह भी ज्ञात है कि रेखा गणित की एक भी आकृति किसी फले- फूले पेड़ की सुन्दरता और श्रेष्टता की तुलना नहीं कर सकती।

इस लिये जहा प्रश्नकर्ता को असंवद्धता दिखाई देती है वहां मुझे अपने जीवन मे न तो विरोध और न पागलपन ही दिखाई देता है। यह बात ठीक है कि मनुष्य को अपनी पीठ दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार वह अपनी भूलों और पागलपन को भी नहीं देख सकता। परन्तु ऋषियों ने प्राय धार्मिक पुरुषों की तुलना पागलों से की है। इस लिये मुझे यह बात तो जचती है कि मै पागल तो नही हूँ परन्तु सच्चा धार्मिक हो सकता हूँ। इन दो मे से मै सचमुच कौन हूँ, इस बात का निर्णय तो मेरी मृत्यु के पश्चात् ही होगा।

मैंने अपने श्रोताओं को कभी इस बात का आदेश नहीं दिया है कि माला को छोड कर चरखा कातने लग जाओ। मैंने यह सम्मति अवश्य दी है वे कातने का काम और नारायण का जाप दोनों एक साथ कर सकते हैं। और आज जब कि सारा देश धधकती हुई आग मे जल रहा है, मेरा विचार है हम सब लोगों का यह कर्तव्य है कि हमे चरखे की बाल्टियों को जल रूपी सूत से भर देना चाहिये और उस आग को नारायण का जाप करते करते बुझा देना चाहिये।

मैं सर्वत्र चरखा देखना चाहता हू क्यों कि मै सभी स्थानों पर दरिद्रता को देखता हूं। जब तक हम लोक भारत के दरिद्र नारायण को अन्न और वस्त्र न देदेंगे तब तक धर्म उनके लिये कुछ अर्थ नहीं

रखता। आज वे पशुओं की भांति रहते हैं और इस का सारा उत्तर-दायित्व हमारे सिर पर है। इस लिये चरखा हमारे लिये एक तप है। धर्म का अर्थ है असहाय पुरुषों की सेवा करना। ईश्वर स्वयं हमें असहाय और पङ्गु के रूप में दर्शन देता है। परन्तु हम विचारशक्ति रखते हुये भी उनकी अर्थात् ईश्वर की ओर ध्यान नहीं देते। वेदों मे ईश्वर है और नहीं भी है। जो लोग वेद के यथार्थ भाव को समझते हैं उन्हें वेद मे ईश्वर प्रतीत होता है। जो वेद के अक्षरों के पीछे पडे हैं, वे तो सूखे शास्त्री हैं। निःसन्देह नरसिंह महता माला की प्रशंसा करते हैं और जहां यह घटती है वहा माला की प्रशसा ठीक भी है। परन्तु उन्हीं नरसिंह ने इस प्रकार गाया है —

"तिलक और तुलसी किस काम के है, माला और जाप भी किस काम के हैं, वेदों का वैयाकरणी ज्ञान भी किस काम का है, अक्षर-ज्ञान भी किस काम का है? ये तो सभी पेट भरने के उपाय हैं और परब्रह्म को पहचानने में यदि इन से सहायता नहीं मिलती है तो भी सभी व्यर्थ है।"

ईसाई अपनी माला के दाने गिनता है और मुसलमान अपनी तसफीह के। परन्तु दोनों ही अपने आप को धर्म से गिरे हुए मानेंगे यदि उन दोनों की मालाएं उस व्यक्ति की सहायता के लिये उन्हें जाने से रोकेंगी, जिसे कि सांप ने काट लिया है और जिसके प्राण निकलने वाले हैं। केवल वेदों का ज्ञान हमारे ब्राह्मणों को ब्रह्म की शिक्षा देने के योग्य नहीं बना सकता। यदि ऐसा होता तो मेक्समूलर भी ब्रह्म-ज्ञानी बन जाता। एक ब्राह्मण जिसने कि आज का धर्म समझ लिया है, वह निःसन्देह वैदिक ज्ञान को दूसरे स्थान पर समझेगा और चरखे को प्रथम स्थान देगा। अपने देश के करोड़ों भूखों की भूख को दूर करेगा, और केवल तभी—उसके पहले कभी नहीं, अपने आप को

वेदों के पढने में लगायगा। निःसन्देह किसी सम्प्रदाय विशेष के धर्म की अपेक्षा मैंने सूत कातने के कार्य को ऊचा स्थान दे रखा है। परन्तु इस का अर्थ यह नहीं है कि धर्म के सिद्धांतों को छोड ही देना चाहिये मेरा तो केवल यही अभिप्राय है कि एक धर्म जिसको कि सभी सम्प्रदायों के मानने वाले आचरण मे ला सकते हों वह सब से वडा धर्म है। और इस लिये मेरा कहना है कि एक ब्राह्मण अच्छा ब्राह्मण होगा, एक मुसलमान अच्छा मुसलमान होगा, एक वैष्णव अच्छा वैष्णव होगा, यदि वह चरखे को सेवा की भावना से चलाय।

वास्तव मे मैंने पवित्र राम-नाम के जाप को या माला को इस लिये नहीं अपनाया है कि मेरी मृत्यु समीप आ पहुंची है। परन्तु मैं इतना निर्वल था कि मुझ से चरखा चल नहीं सकता था। मै माला भी फिराता हूं जव कभी मै सोचता हूं कि वह मेरे ध्यान को राम पर स्थिर कर देगी। जव कभी मेरा ध्यान स्थिर हो जाता है तो मुझे माला सहायक होने के स्थान पर विघ्नरूप प्रतीत होने लगती है और मैं उसे ताक मे रख देता हू। यदि मेरे लिये यह वात संभव होती कि मै चरखे को विछौने पर लेटे-लेटे ही चला सकता और मुझे यह प्रतीत हो जाता कि उस स्थिति मे मैं ईश्वर पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकता हूँ तो मै अपनी माला को अवश्य एक ओर रख देता और चरखा चलाने लग जाता। यदि मैं चरखा चलाने योग्य शक्तिशाली हो जाऊं और तव मेरे सम्मुख माला और चरखा दोनों चुनाव के लिये रख दिये जायं तो मै विना किसी संकोच के चरखे को ही ग्रहण करूंगा, उसी को अपनी माला वनाऊंगा, जव तक मैं समझूंगा कि दरिद्रता और भूख मरी मेरे देश मे ताण्डव कर रही है—मैं उस समय की राह देख रहा हूं जव राम नाम का जाप भी मुझे अखरने लगेगा। जव मुझे यह प्रतीत हो जायगा कि 'राम'

वोली से भी ऊपर है तो फिर मुझे नाम के जाप की आवश्यकता न रहेगी। चरखा, माला और राम नाम सभी मेरे लिये एक ही महत्व रखते हैं। वे एक ही कार्य करते हैं—वे मुझे सेवाधर्म सिखाते हैं। मैं अहिंसा को आचरण में वर्षों तक नहीं ला सकता जहां तक मुझ में सेवा का धर्म न होगा। मैं अहिंसा को दृढ किये बिना सचाई को प्राप्त नहीं कर सकता। और सचाई के सिवा कोई दूसरा धर्म ही नहीं है। सचाई ही राम, नारायण, ईश्वर, खुदा, अल्लाह और गॉड है।

जैसा कि नरसिंह कहते हैं सोने की भिन्न भिन्न आकृतियां विभिन्न नाम और भेदों को प्रकट करती है, परन्तु वास्तव में तो वे सभी सोना ही है।

—यंग इण्डिया : अगस्त १४, १६२१ ई०

अध्याय ३

ईश्वर की सेवा

प्रश्न—जब हम ईश्वर को जानते ही नहीं तो उसकी सेवा कैसे कर सकते हैं ?

उत्तर—हम चाहे ईश्वर को न भी जानें परन्तु हम उसकी सृष्टि को तो जानते है; उसकी सृष्टि की सेवा ही उसकी सेवा है।

प्रश्न—परन्तु हम समस्त संसार की सेवा कैसे कर सकते है ?

उत्तर—हम ईश्वर की सृष्टि के उस भाग की सेवा कर सकते है जो कि हमारे समीप है और जिसे हम भली भाति जानते है। हम अपने पास के पड़ोसी से ही उसे आरम्भ कर सकते हैं। हमे अपने आंगन को साफ रख कर ही सतोप न कर लेना चाहिये; हमे यह भी देखना चाहिए कि हमारे पडोसी का आंगन भी साफ रहे। हमे अपने परिवार की सेवा करनी चाहिये परन्तु उस मे ही लगे रह कर अपने गांव को नष्ट नहीं होने देना चाहिये। अपने गांव की रक्षा मे ही अपनी प्रतिष्ठा है। परन्तु हम सब को अपनी शक्ति का पूर्ण ज्ञान कर लेना चाहिये। ससार जिसमे कि हम रहते है, उसके विपय मे जो हमारा ज्ञान है वह सीमित हुआ है और इस लिये हमारी सेवा की योग्यता भी सीमित है। परन्तु मुझे इसी बात को अत्यन्त सरल शब्दों मे उपस्थित कर देने दीजिये। हमे चाहिये कि हम अपने पास के पडौसी की चिन्ता अपनी चिन्ता से अधिक करें अपने आंगन का कचरा अपने पड़ौसी के आंगन मे फैंक

देना मानवता की सेवा करना नहीं कहलाता, परन्तु वह तो शत्रुता करना कहलाता है। इस लिये हमे अपने पड़ौसी की सेवा से आरम्भ कर देना चाहिए।

—हरिजन : अगस्त २२, १६३६ ई०

ईश्वर को व्यक्तिगत सेवा की आवश्यकता नहीं है। वह अपने जीवों की सेवा करता है और उसके प्रतिफल मे उनसे किसी भी तरह की सेवा पाने की आशा नहीं करता है। वह इस बात मे अद्वितीय है, जैसा कि बहुत सी अन्य बातो मे है। इसलिये ईश्वर के सेवकों की जांच यह है कि वे उसके जीवों की सेवा मे लगे हुए है।

—हरिजन' नवम्बर १६,१६३८ ई०

मनुष्य की अन्तिम अभिलाषा

ईश्वर साक्षात्कार है

एक मित्र पूछता है कि क्या गांधीजी का उद्देश्य मनुष्य सेवा ही है कि जिस मे वे देहात मे बैठ कर देहातियों की शक्ति भर सेवा करते रहें ?

गॉधी जी ने उत्तर दिया "मैं अपनी सेवा के अतिरिक्त और किसी की सेवा नहीं कर रहा हूँ। इन देहाती भाइयों की सेवा करने मे ही मुझे आत्म-ज्ञान मिलेगा। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार है और उसके सभी कार्य—अर्थात् सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक ईश्वर-दर्शन की भावना से ही होने चाहिएं। उसकी सिद्धि के लिये सम्पूर्ण जगत् की सेवा में तुरन्त ही जुट जाना एक आवश्यक बात हो जाती है। केवल

इस लिये कि ईश्वर को पाने का एक ही मार्ग है कि उसे उसकी ही सृष्टि में देखना और उस में ही तद्रूप हो जाना। यह भी अपने देश के द्वारा ही हो सकता है। मैं उस पूर्णावतार ईश्वर का एक अंश हूँ और मैं उसे शेष मानवता से पृथक नहीं पा सकता। मेरे देश के लोक मेरे अत्यन्त निकट के पड़ोसी हैं। वे इतने असहाय इतने निराधार इतने विवश हो चुके हैं कि मुझे उनकी सेवा में पूर्णतया लग जाना चाहिये। यदि मुझे इस बात का निश्चय हो गया होता कि मैं उसे हिमालय की गुफा में पा सकता हूँ, तो मैं अविलम्ब ही वहाँ पहुंच जाता। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैं उसे मनुष्यों से दूर नहीं पा सकता हूँ।"

प्रश्न—परन्तु मनुष्य के आत्मिक विकास (रुहानी तरक्की) के लिये भी कुछ विश्राम की आवश्यकता है। देहात के कष्टों और कठिनाइयों में अपने को मिलाकर कोई भी मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता है।

उत्तर—"किसी सीमा तक शारीरिक शान्ति व विश्राम आवश्यक है, परन्तु उससे अधिक बढ़ जाने पर वह लाभ पहुंचाने के स्थान पर विघ्न रूप होता है। इसीलिए तो अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाना और उन्हें पूर्ण करना एक माया जाल है। किन्हीं शारीरिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना या किसी भी व्यक्ति की मानसिक आवश्यकताओं को भी पूर्ण करना, किसी सीमा तक सर्वथा ही बन्द कर दिया जाना चाहिये, जिससे मनुष्य शरीर अथवा मन के भोगों में न पड़ जाय। मनुष्य को अपनी शारीरिक और मानसिक परिस्थितियों को ठीक कर लेना चाहिये जिससे वह मानवता की सेवा बिना विघ्नबाधा के कर सके—उसकी सारी शक्ति इसी प्रकार की सेवा में लगनी चाहिये।"

—हरिजनः अगस्त २९, १९३६ ई०

मै ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता हूँ। मै जानता हूँ कि 'ईश्वर' 'सत्य' है। मेरे लिये ईश्वर को पहचानने का मार्ग है अहिंसा-प्रेम। मैं भारत की स्वाधीनता के लिए जीता हूँ और उसी के लिये मरूँगा; क्योंकि यह बात सचाई का एक भाग है। केवल स्वतन्त्र भारत ही सच्चे ईश्वर की पूजा कर सकता है। मै भारत की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करता हूँ, क्योंकि मेरा 'स्वदेशी' मुझे सिखाता है कि उसमे उत्पन्न होकर व उसके संस्कारों को पाकर उसकी सेवा करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है और उसे (देश को) भी मेरी सेवा से लाभ उठाने का सब से प्रथम अधिकार है। परन्तु मेरा देश-प्रेम पक्षपात पूर्ण नहीं है—वह अन्य जातियों को कष्ट पहुँचाने मे ही अपने कर्तव्य की इति श्री नहीं मानता, परन्तु शब्द के सच्चे अर्थों मे उन सभी को लाभ भी पहुँचायगा। भारत की स्वतन्त्रता जिसका चित्र मेरे हृदय मे अङ्कित है, ससार के लिए किसी भी स्थिति मे भयजनक न होगी।

—यंग इण्डिया: अप्रेल ३, १६२४ ई०

एक श्लोक है जिस मे कहा गया है कि वह मनुष्य जो विना यज्ञ किये अर्थात् विना दिये खाता है, चोर है। यदि ईश्वर हमे शक्ति और धन देता है तो वह इस लिये देता है कि हम उनका मानवता के कल्याण के लिये उपयोग करे न कि अपने विषय भोग के साधन के लिए।

—यग इण्डिया अक्टूबर ६, १६२७ ई०

मेरा मत है ईश्वर की सेवा करना और इसी लिए समस्त मानव जगत् की सेवा करना। मैं न तो ईश्वर और न मानव ससार की ही सेवा कर पाऊँगा, यदि एक भारतवासी के नाते मैं भारत की सेवा न करूँ;

और एक हिन्दू के नाते भारत मे रहने वाले मुसलमानों की सेवा न करूँ। स्वेच्छा पूर्वक सेवा का अर्थ है सच्चा प्रेम।

मै ईश्वर की पूर्ण एकता में विश्वास रखता हूँ और इसी लिये मनुष्य मात्र की एकता मे भी।

—यंग इण्डिया: सितम्बर २४,१९२५ ई०

स्वय ईश्वर अपनी वैठक उस मनुष्य के हृदय मे वनाता है। जो अपने साथियों की सेवा करता है।

—यग इण्डिया: सितम्बर २४,१९२५ ई०

एक मनुष्य जिसको कि ईश्वर में और उसकी दया मे—जो कि उसका न्याय है, कुछ भी विश्वास है, वह मनुष्यों से घृणा नहीं कर सकता है। यद्यपि वह उनके बुरे कार्यों से अवश्य घृणा करेगा। क्योंकि मनुष्य स्वयं ही अनन्त दोषों का पात्र है और वह सदा ही दूसरों की सहायता पाने की आशा रखता है, ऐसी स्थिति मे उसे उन लोगों से घृणा नहीं करनी चाहिये, जिनमे कि वह दोष देखता है।

—यग इण्डिया: जनवरी २६,१९२२ ई०

ईश्वर तो केवल एक ही है; परन्तु उसने मुझे इस योग्य वना दिया है कि मैं उसे एक पत्थर मे, एक अग्रेज में और एक देश द्रोही में, यदि आप चाहें तो, देख सकता हूँ और पूजा कर सकता हूँ। क्योंकि ो एक देश-द्रोही तक से भी घृणा नहीं करूँगा। मेरा धर्म तो मुझे शिक्षा देता है।

यग इण्डिया· जनवरी १,१९२५ ई०

मेरे धर्म का आधार सचाई और अहिंसा है। सत्य मेरा ईश्वर है। उसको जानने का मार्ग अहिंसात्मक है।

—यंग इण्डिया, जनवरी ८,१९२५ ई०

संसार उन लोगों से नहीं झगड़ता जिनकी ईश्वर में सच्ची श्रद्धा है और जो धर्म के वास्तविक अर्थ को समझते हैं। और यदि ऐसा होता भी है तो ऐसे मनुष्य अपने विरोधियों के क्रोध को अपनी भलमनसाहत के द्वारा दूर कर देते हैं। यहाँ पर धर्म का केवल इतना ही अर्थ नहीं है कि नमाज पढ़ना या मन्दिरों में जाना। परन्तु इस का तो अर्थ यह है अपने आपको और ईश्वर को पहिचानना।

—यंग इण्डिया अक्टूबर ६,१९२० ई०

अध्याय ४

उच्च विचार

मनुष्य तो कुछ भी नहीं है। नेपोलियन की ऊंची ऊँची योजनाएं मिट्टी में मिल गईं और अन्त में सेंट हेलेना में उसे बन्दी बन कर रहना पड़ा। कैसर महान् ने यूरोप का साम्राज्य पाना सोचा था, परन्तु वह एक सामान्य नागरिक की भांति ही रह सका। क्योंकि ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। हमें ऐसे ही दृष्टान्तों पर दृष्टिपात करके विनयी बनना चाहिये।

—यंग इण्डिया : अक्टोबर ६, १९२४ ई०

ईश्वर पर भरोसा करने के साथ तलवार पर भरोसा करना कोई मेल ही नहीं खाता।

—यंग इण्डिया : दिसम्बर ३०, १९२५ ई०

मनुष्य के लिये कुछ भी चाहे सम्भव न हो, परन्तु ईश्वर के लिये तो कुछ भी असम्भव नहीं।

—यंग इण्डिया : फरवरी ६, १९२६ ई०

हम ईश्वर के हाथों में तिनके की भांति हैं। वही हमें जहां चाहे वहां उड़ा सकता है। हम उसकी इच्छा के विरुद्ध जा ही नहीं सकते। उसने हमको मिल जुल कर रहने के लिये उत्पन्न किया है। न कि सर्वदा पृथक् पृथक् रहने के लिये।

—यंग इण्डिया : मई १५, १९२४ ई०

ईश्वर अपने भक्तों की जांच करता है—पूर्ण परीक्षा करता है, परन्तु उनके सामर्थ्य के बाहर कभी नहीं। वह जिस पवित्र जांच में उन्हें उतारना चाहता है उसमें सफलता पाने की पूरी शक्ति भी देता है।

—यंग इण्डिया, फरवरी १६, १९२५ ई०

यदि हम ईश्वर को ही एक-मात्र अपना सहायक मान कर उसी की गोद का आश्रय लेलें, तो शासक हमारी कैसी भी कडी परीक्षा क्यों न लें, हम उसमें अवश्य सफल होंगे। यदि उसकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है, तो हमें यह बात मान लेने में क्या हानि है कि वह उन्हीं शासकों द्वारा हमारी जांच कर रहा है? मैं अपने कष्ट उसके समक्ष उपस्थित करूंगा, उस पर क्रोध करूंगा क्योंकि वह हमारी जांच बडी निर्दयता से कर रहा है और वह हमें शांति देगा, क्षमा करेगा परन्तु आवश्यकता है उस पर भरोसा करने की। किसी भी क्रूर शासक का सामना करने का उपाय यह है कि उसके साथ सीधा वर्ताव किया जाय न कि उससे घृणा की जाय, अथवा उसको मारा जाय, परन्तु हमें विनय से ईश्वर को स्मरण करना चाहिए और अपने संकट के समय पर उससे पुकार कर सहायता मांगनी चाहिए।

—यंग इण्डिया, दिसम्बर १५, १९२१ ई०

कभी कभी ईश्वर उन लोगों की बहुत कडी जांच करता है जिनको कि वह कृतार्थ करना चाहता है।

—यंग इण्डिया, जून ११, १९२१ ई०

मैंने जितने तामिल भाषा के पाठ पढ़े है उनमे से एक कहावत मुझे सदा ही याद रहती है। उसका शाब्दिक अर्थ है—ईश्वर ही असहायों का सहायक है। सत्याग्रह का जो आधार है वह उसी सत्यश्रद्धा पर टिका हुआ है। इस सचाई को सिद्ध करने के लिये अनन्त दृष्टान्त हिन्दु धर्म के ग्रन्थों मे भरे पडे है।

—यंग इण्डिया : फरवरी १९, १९२५ ई०

मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूँ कि चाहे अन्य सभी आप को छोड़ दें, परन्तु ईश्वर कभी किसी को भी संकट के समय नही छोडता। कई वर्ष हुए, जब मै तामिल पढता था, मैंने एक कहावत पढी थी, जिसे मैं भूल ही नही सकता। वह यह है, "तिक्कात्रा वनुक्का दैवसेपुने" जिसका अर्थ है, जो लोग अनाथ है, ईश्वर उनका नाथ है।"

हमे—हम सभी को अपने पैरों पर अकेले खडा रहना सीख लेना चाहिये। केवल ईश्वर ही हमारा कभी धोखा न देने वाला और सदा का सहायक है।

—यंग इण्डिया : सितम्बर २९, १९२१ ई०

ईश्वर असहायों की सहायता करता है, उन लोगों की नहीं जो समझते है कि हम कुछ कर सकते है।

—यंग इंडिया : फरवरी २३, १९२२ ई०

एक भंगी जो उसकी सेवा और आराधना मे लगा हुआ है उस राजा की तुलना मे जो कि ईश्वर के नाम पर ही अपनी भेटों को एक ईश्वर के ही विश्वस्त के रूप से स्वीकार करता है। उतना ही मान पाने का अधिकारी है हम अल्पज्ञ

मनुष्यों के और उसके न्याय मे इतना अन्तर है कि वह किसी भी विषय का निर्णय देते समय मनुष्य के कार्य को नहीं परन्तु उसके भाव को देखता है। हम कार्य से भाव को समझने का प्रयत्न करते है। परन्तु उसे तो भाव और कार्य दोनों का ज्ञान रहता है, इस लिये कार्य का निर्णय भावना को देख कर देता है।

—यग इण्डिया नवम्बर २५, १९२६ ई०

ईश्वर के यहां हमारे हिसाव की पुस्तक मे हमारे कार्यों का ही विवरण है न कि हमारे पढ़ने और बोलने का।

—यग इण्डिया : जनवरी ७,१९२५ ई०

ईश्वर प्रत्येक भली व बुरी वस्तु का सही सही हिसाव रखता है। उस से बढ़कर इस जगत् मे दूसरा कोई हिसाव रखने वाला नहीं है।

—हरिजन सितम्बर २१,१९३४ ई०

ईश्वर को पवित्र यज्ञ की इच्छा है।

—यग इण्डिया फरवरी ६,१९२७ ई०

ब्रह्मचारी का अर्थ है ईश्वर का जिज्ञासु, वह मनुष्य जो अपने अच्छे वर्तावसे शीघ्र से शीघ्र ईश्वर के समीप पहुचता है। संसार के सभी बड़े बडे धर्म चाहे कितने भी एक दूसरे से भिन्न क्यों न हों इस वात पर एकमत है कि कोई भी स्त्री अथवा पुरुष अपवित्र हृदय से ईश्वर के दरवार मे खड़ा नहीं रह सकता।

—यग इण्डिया सितम्बर ८,१९२७ ई०

ईश्वर एक कठोर काम लेने वाला स्वामी है। वह दिखावटी काम से कभी सन्तुष्ट नहीं होता। उसकी चक्कियाँ यद्यपि निश्चय से निरन्तर चलती ही रहती हैं, बहुत धीरे धीरे पिसाई करती है, और उसे किसी की जीवन का शीघ्र ही अन्त कर देने मे सतोप नहीं होता। वह तो सर्वथा पवित्र मनुष्यों के त्याग को अपनाता है। और इसलिये तुम्हें व मुझे प्रार्थना मे लगे रह कर अपनी नाव खेनी है—हमे वहा तक जीवित रहना होगा, जहां तक उसे हमे जीवित रखना है।

—यग इ डिया · सितम्बर २२,१९२७ ई०

मेरे पास ऐसे नवयुवकों के पत्रों की भरमार है, जो स्पष्टशब्दों मे अपनी बुरी आदतों के विषय मे और उस गहरी खाई के विषय मे जो कि उनकी जीवन में उनके अविश्वास के कारण से उत्पन्न हो चुकी है वर्णन करते हैं। केवल चिकित्सक का परामर्श ही उन्हें सन्तोप नही पहुचा सकता है। मैं तो उन्हें केवल यही कहूँगा कि वे ईश्वर और उसकी कृपा पर आत्म समर्पण करें और उन में सर्वदा विश्वास रखें। जीवित धर्म को अपने जीवन में ठीक स्थान देकर हमें इस अवसर का लाभ उठाना चाहिये। क्या अखो भगत ने ऐसा नहीं कहा है?—चाहो जैसे रहो; परन्तु इस प्रकार रहो कि ईश्वर के दर्शन हो सकें।

—यग इ डिया · अगस्त ३०,१९२८ ई०

राम-नाम उन लोकों के लिये नहीं है जो कि ईश्वर को प्रत्येक सभव उपाय धोखा देते हैं और प्रति वार उस से वच जाने की आशा रखते है। यह तो उन लोकों के लिये है जो ईश्वर से डर डर कर चलते हैं। जो संयम से रहते हैं और जिन्हें कोई उनके सिद्धांतों से डिगा नहीं सकता है।

—यग इंडिया : जनवरी २२,१९२५ ई०

फिर भी ऐसे लोक है जिनमें सन्देह और निराशा ठूंस ठूंस कर भरी हुई है। उनके लिये ईश्वर का नाम है। यह ईश्वर का आश्रय है कि जो कोई भी अपनी निर्बलता और असहायता में उसका पल्ला पकड़ता है, उसे वह बल देता है। महाकवि सूरदास ने गाया है कि 'जब मैं निर्बल हू तभी मैं बलवान् बनता हूं।' राम निर्बल का बल है। यह बल तोप या तलवार से प्राप्त नहीं हो सकता। यह तो उसके नाम पर भरोसा रखने से पैदा होता है। राम ईश्वर का नाम है। तुम गॉड या अल्लाह या जो कुछ नाम चाहो सो कहो, परन्तु जब तुम पूर्णतया उसी का भरोसा कर लोगे, तुम बलवान् बन जाओगे, निराशायें नष्ट हो जायगी।

—यग इण्डिया . जून १,१९२५ ई०

जो लोक ईश्वर में अटल श्रद्धा रखते हैं उन के सभी काम अवश्य ही पूर्ण होते है।

—यग इ डिया नवम्बर १,१९२५ ई०

परन्तु मैं ईश्वर में विश्वास रखता हूँ और क्षण भर के लिये भी उसका भरोसा नहीं छोड़ता और क्यों कि जो कुछ भी सुख-दुख वह मुझे देता है, मैं उसी से संतोष पा लेता हूँ, मुझे असहायता का अनुभव हो सकता है, परन्तु मैं निराश कभी नहीं होता।

—यंग इण्डिया जनवरी २७,१९२७ ई०

भाग दूसरा

अध्याय १

प्रार्थना का अर्थ,

प्रश्न—श्रीमान्, आप प्राय. हमे ईश्वर का पूजन करने के लिये कहते है; प्रार्थना के लिये कहते है परन्तु कभी यह नहीं वतलाते कि कैसे और किसकी की जाय। कृपा करके मुझ को यह वात क्या आप समझाएगे ?

उत्तर—ईश्वर के पूजन का अर्थ है ईश्वर की प्रशसा को गाना। प्रार्थना के द्वारा मनुष्य अपनी अयोग्यता और निर्वलता को स्वीकार करता है। ईश्वर के सहस्रों नाम है, या ऐसा कहिये कि वह विना नाम का है। हम उसकी पूजा कर सकते हैं—प्रार्थना कर सकते हैं—जिस किसी भी नाम से जो कि हमे प्यारा हो। कुछ लोग उसे राम कहते है, कुछ कृष्ण कहते है, कुछ रहीम कहते है और फिर भी उसे ईश्वर कहते हैं। सभी उस प्रकाश की पूजा करते है। परन्तु जैसे सव प्रकार का भोजन प्रत्येक मनुष्य को अनुकूल नहीं वैठता उसी प्रकार उसके सभी नाम सभी को प्यारे नहीं होते प्रत्येक मनुष्य अपने अपने ढंग के नाम को चुन लेता है और क्योंकि वह घट-घट-व्यापी, सर्व शक्तिमान् और सर्व व्यापक है, हमारे हृदय की यथार्थ वातों को जान लेता है और हमारी योग्यता के अनुसार उन्हे पूर्ण भी करता है।

इस लिए पूजन या प्रार्थना वाणी से नहीं परन्तु हृदय से होती है। और यही कारण है कि एक गूँगा और हकला, अविवेकी और मूर्ख सभी समानता से उसे कर सकते हैं। परन्तु उन लोकों की प्रार्थनाए कभी नहीं सुनी जाती हैं जिनकी वाणी मे तो अमृत है परन्तु हृदय में विष।

इसलिये जो मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करना चाहता है उसे पहले अपने हृदय को पवित्र कर लेना चाहिये। राम हनुमान् की केवल वाणी पर ही नहीं वसे हुए थे परन्तु उनके हृदय पर भी उसी प्रकार विद्यमान थे। उन्होंने हनुमान को अक्षय शक्ति दी। उन्हीं की शक्ति के वल पर हनुमान् ने समुद्र को पार किया और पर्वत को उठा लिया। श्रद्धा ही हमे विक्षुब्ध समुद्रों से पार लगाती है, श्रद्धा ही पर्वतों को हिला देती है और वही समुद्रों को लंघवा देती है। परन्तु श्रद्धा कोई अन्य वस्तु नहीं है—वह तो हमारे अन्तरात्मा मे जो ईश्वर है उमी को निरन्तर प्रतिक्षण तत्परता से अनुभव करने का ही नाम है। जिसने ऐसी श्रद्धा को पा लिया है, उसे दूसरी किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। चाहे उसका शरीर भले ही निर्वल रहे, परन्तु उसकी आत्मा सवल मिलेगी। शरीरशुद्धि द्वारा वह आत्मिक ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

परन्तु उस सीमा तक हृदय को शुद्ध कैसे किया जाय? ओष्ठों की भाषा तो सरलता से सिखाई जा सकती है परन्तु हृदय की भाषा कैसे सिखाई जा सकती है? केवल भक्त, सच्चा भक्त ही उसे जानता है और उसे सिखा सकता है। गीता मे तीन स्थान पर भक्त की परिभाषा वताई गई है और साधारणतया सर्वत्र उसका वर्णन किया गया है।

परन्तु भक्त की परिभाषा की जानकारी से ही काम नहीं चल सकता है। वे इस भूतल पर वहुत कम हैं। इस लिये मैंने सेवा धर्म को ही साधन वनाने की सम्मति दी है। ईश्वर अपना आसन उस व्यक्ति के हृदय पर स्थिर करता है जो अपनी जाति की सेवा मे तत्पर है। यही कारण है कि नरसिंह मेहता ने इस वात को अच्छी तरह समझ-बूझ कर इस प्रकार गाया है—"वही सच्चा वैष्णव है जो दूसरों के दु ख को देख कर दु खी होता है।" अवूवेन अधम भी वैसे ही थे। उन्होंने अपने

साथियों की सेवा की और इसीलिए उनका नाम ईश्वर के सेवकों की सूची मे सव से ऊँचे स्थान पर आया।

परन्तु हम दु:खी और शोकातुर किसे कहें? कुचले हुए और दरिद्र लोगों को। जो भक्त है उन्हें चाहिये कि वे ऐसे लोगों की मन, वचन और कर्म से सेवा करें। जो मनुष्य कुचली हुई जातियों को अछूत मानता है, वह कर्म से उन लोगों की सेवा कैसे कर सकता है? जो मनुष्य दरिद्र लोकों के लिए अपने शरीर को चरखा कातने तक का कष्ट नहीं पहुँचने देता है और भूठे वहानों से टालम-टोल करता है, वह सच्ची सेवा का तात्पर्य ही नहीं जानता। एक हट्टा-कट्टा पुरुप भीख पाने का अधिकारी नहीं परन्तु वह तो अपने लिये रोटी कमाने की शिक्षा पाने के योग्य है। भीख तो उसे नष्ट करती है। जो मनुष्य दरिद्रों के सामने सूत कातता है और उन्हें सूत कातने की प्रेरणा करता है. वह ईश्वर की इतनी वडी सेवा करता है जितनी कि दूसरा कोई नहीं। भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो मनुष्य भक्ति पूर्वक मुझे छोटी से छोटी वस्तु जैसे—फल, फूल, पत्ती या पानी भी भेंट करता है, वह मेरा ही भक्त है।"

जहाँ पर नम्र ठुकराए हुए और भूले हुए लोग हैं, वहीं पर ईश्वर वसता है। इस लिये सूत का कातना ऐसे लोगों के लिये सव से वड़ी प्रार्थना सव से वडी पूजा, और सव से वडा यज्ञ है। प्रार्थना से भरा हुआ हृदय ही मनुष्य को ईश्वर के चरणों मे ले जाने वाली गाडी है। और सेवा ही हृदय को प्रार्थना से भरने वाली है। वे हिन्दू जो इस युग मे शुद्ध हृदय से अछूतों की सेवा करते है, सच्ची प्रार्थना करते है। हिन्दू अथवा अन्य लोग जो निर्धनों और असहायों के लिये प्रार्थना करते हुए सूत कातते है, वे यथार्थ मे सच्ची प्रार्थना करते हैं।

—यग इण्डिया · सितम्बर २४,१९२५ ई०

मेरा कोई भी काम विना प्रार्थना के नहीं होता। मनुष्य भूल करने वाला प्राणी है। उसे अपने कार्यों का विश्वास कभी नहीं हो सकता है। जिसे वह अपनी प्राथना का उत्तर मान बैठता है, वही शायद उसके अभिमान की गूँज भी हो सकती है। क्योंकि सच्ची राह पाने के लिये तो मनुष्य का हृदय शुद्ध और निर्मल होना आवश्यक ही है—उस मे बुराई तो नाम मात्र भी नहीं होनी चाहिये। मै अपने लिये इस वात का दावा नहीं कर सकता हूँ। मेरी आत्मा तो अपूर्ण है। क्योंकि वह तो निरतर लड रही है, प्रयत्न कर रही है और भूलें करती है। किन्तु मै अपने पर और दूसरों पर अनुभव करके ही ऊँचा उठ सकता हूँ। मै ईश्वर की पूर्ण एकता पर विश्वास रखता हूँ और इसी लिए मानवता पर भी। क्या हुआ यदि हमारे शरीर असख्य है ? हमारी आत्मा तो एक ही है न ? विस्तार के कारण सूरज की किरणें असख्य है, किन्तु उनका स्रोत तो एक ही है। इसी लिए न तो मैं पापिओं से दूर रह सकता हूँ और न मैं धार्मिक पुरुषों से ही पृथक् रह सकता हूँ। इसलिये चाहे मै चाहूँ या न चाहूँ मुझे अपने अनुभव और परीक्षणों मे समस्त मानवता को लपेटना पडेगा। परीक्षणों के विना मैं कुछ नहीं कर सकता। जीवन ही असख्यों परीक्षणों की लम्बी शृङ्खला है।

—यग इंडिया : सितम्बर १५,१९२४ ई०

प्रार्थना में श्रद्धा न होना

एक विद्यार्थी ने एक राष्ट्रीय सस्था (कौमी मजलिस) के प्रिन्सिपल को एक पत्र लिखा है, जो हमारे सामने है और जिसमे उसने निवेदन किया है कि मैं प्रार्थना की सभाओं मे उपस्थित होना नहीं चाहता, इसलिए मुझे उस विषय मे क्षमा किया जाय।

"मैं आप से निवेदन करना चाहता हूँ कि मुझे प्रार्थना मे विश्वास नहीं है; क्यों कि मैं ईश्वर नाम की किसी वस्तु पर ही विश्वास नहीं रखता, जिसकी मैं प्रार्थना करूँ। मैं अपने लिये किसी भी ईश्वर की सत्ता को जानने की आवश्यकता ही नहीं समझता। यदि मैं उसकी ओर ध्यान न दूँ, और शान्ति तथा सचाई से अपनी योजनाओं को पूरा करने मे ही लगा रहूँ तो मेरी हानि ही क्या होगी ?

"जहाँ तक सामूहिक प्रार्थना का सम्बन्ध है, वह निरर्थक है। क्या एक ऐसा बडा मनुष्यों का समूह किसी पदार्थ पर अपने ध्यान को केन्द्रित कर सकता है—वह चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो ? क्या छोटे और विवेक हीन बच्चों से इस बात की आशा की जा सकती है कि वे हमारे धार्मिक ग्रन्थों मे बताई हुई सूक्ष्म वस्तुओं यानी ईश्वर और आत्मा और सभी मनुष्यों की समानता के और इसी प्रकार के अन्य गम्भीर विषयों पर अपना ध्यान जमायें ? इतने बडे काम को करने के लिए एक विशेष समय और करवाने की आशा के लिये एक विशेष मनुष्य रखा जाता है। क्या इस प्रकार के ईश्वर के प्रति बच्चों के हृदय मे प्रेम उत्पन्न किया जा सकता है और फिर इस प्रकार के कृत्रिम उपाय से ? इस से बढ़ कर युक्तिविरुद्ध बात क्या होगी कि विभिन्न प्रकार के मनुष्यों से एक ही प्रकार के बर्ताव की आशा की जाय ? इसीलिये प्रार्थना बल पूर्वक नहीं करवानी चाहिये। जो लोग चाहे प्रार्थना करें और जो न करना चाहें न करें। बिना समझे-बूझे कोई भी काम करना अनैतिक और नीचे गिराने वाला है।"

अब अन्तिम बात का क्या महत्व है उसकी जांच करें। कोई अनुशासन की आवश्यकता को अनुभव करे इस से पूर्व उससे उसका पालन करवाया जाना नीतिविरुद्ध और गिराने वाला न होगा। क्या पाठशाला की पढाई के क्रम के अनुसार विषयों को पढ़ना अनीति

और पतन का कार्य होगा, यदि कोई पुरुष उसकी आवश्यकता को अनुभव न करे ? क्या किसी बालक को उसकी मातृ-भाषा पढ़ने से छुटकारा मिल जायगा यदि वह इस बात के लिये आग्रह करे कि वह तो निरर्थक है ? क्या यह बात कहना अधिक सत्य नहीं होगा कि एक विद्यालय का बालक इस कार्य का निर्णय करने का विवेक नहीं रखता कि उसे क्या सीखना चाहिये या उसे किस प्रकार के अनुशासन को मानना चाहिये ? जब कि उसने किसी संस्था को अपना लिया है, तो फिर अपने चुनाव का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उस संस्था मे सम्मिलित होने का अर्थ ही यह है कि वह स्वेच्छा से उसके नियम और व्यवस्था को स्वीकार करेगा। चाहे तो वह उस संस्था को छोड सकता है परन्तु वह इस बात का चुनाव उसके हाथ मे नहीं कि वह क्या और कैसे सीखे। जो कोई भी बात विद्यार्थियों को आरम्भ मे अरुचिकर और नीरस प्रतीत होती हो उसे, आकर्षक और समझने योग्य बनाने का कार्य अध्यापकों का है।

ऐसा कह देना बहुत सरल है कि मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ। क्योंकि ईश्वर को यह बात सह्य है कि मनुष्य उसके विषय मे जो चाहे सो निर्भय हो कर कह दे। वह तो हमारे कार्यों की जाच करता है। यदि उसके नियम को कोई तोडता है तो उसे जो दण्ड मिलता है वह प्रतिशोध भावना से नहीं, परन्तु उसका सुधार करने और अनिवार्यता के कारण से है। ईश्वर की सत्ता नहीं हो सकती—इस बात को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर है। जितना ही हम उसे नहीं अनुभव करते उतना ही हमारे लिये अधिक बुरा है। उसे अनुभव नहीं करना ही एक रोग है। जिसे हमे किसी दिन निकाल कर बाहर करना होगा चाहे उसके लिये हमारी इच्छा हो या न हो।

परन्तु किसी विद्यार्थी को विवाद नहीं करना चाहिये। उसे अनुशासन के लिये प्रार्थना-सभा मे सम्मिलित होना चाहिये, यदि उस

विद्यालय मे, जिस मे वह पढ़ता है, इस प्रकार की उपस्थिति अनि-वार्य है। वह विनय से साथ अपने सन्देहों को अध्यापक के समक्ष उपस्थित कर सकता है। जो बात अच्छी न लगती हो उस पर उसे विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। परन्तु यदि उसके मन मे अध्यापकों के लिये मान रहता है तो वह उस बात को बिना विश्वास के भी अवश्य करेगा जो उसको करने के लिये कही गई है। डर से नहीं अज्ञान से नहीं परन्तु यह मान कर कि ऐसा करना ही ठीक है, और इस आशा से कि जो आज उसके लिये अन्धकारमय है वह किसी न किसी दिन उस के समक्ष प्रकाशित हो जायगा। प्रार्थना भीख नहीं है। यह आत्मा की पुकार है। वह अपनी निर्बलता की दैनिक स्वीकृति है। हम मे जो सब से बड़ा है उसको निरन्तर अपनी अल्पता की स्मृति होती रहती है और मृत्यु, रोग, बुढ़ापा, आदि की बातें भी उसे स्मरण रहती है। हम मृत्यु के मुह मे खडे है। हमारा उन सब योजनाओं के लिये मरमिटना किस काम का है जब कि वे सभी पलक मारते ही मट्टी मे मिल जाती है या हम ही अचानक और बिना किसी जान-कारी के उनसे पृथक् कर दिये जाते है? परन्तु हम चट्टान की भांति अपने आप को स्थिर मानेंगे यदि हम सचाई के साथ यह कहे कि 'हम ईश्वर और उसकी योजनाओं के लिये कार्य करते है।' तब सभी बातें इतनी स्पष्ट हो जाती है जितना दिन का प्रकाश। तब कुछ भी नाश नही होता है, तब सारा नाश केवल दिखावटी है। तब और केवल तभी मृत्यु और विनाश की कोई वास्तविकता नहीं रहती। क्योंकि मृत्यु और विनाश उस अवस्था मे केवल एक परिवर्तन रह जाते है। एक कलाकार अपने बनाए हुये चित्र को इस लिये मिटाता है कि उससे भी अच्छा बनाया जाय। एक घड़ी बनाने वाला खराब पुर्जे को इस लिये फेंक देता है कि उसके स्थान पर एक नया और उपयोगी पुर्जा लगाया जाय।

सामूहिक-प्रार्थना एक बहुत बडी वस्तु है। प्राय जो हम अकेले मे नहीं कर सकते है उसी को समूह के साथ रहकर कर सकते हैं। बालकों को इस बात की तसल्ली की आवश्यकता नहीं है। यदि वे नियमानुसार आन्तरिक विरोध के बिना प्रार्थना करते रहे, तो उन्हें आनन्द आने लगेगा। परन्तु बहुत से विद्यार्थी ऐसा नहीं करते हैं। उनमे से कुछ तो नटखट भी होते है। कुछ भी हो, प्रार्थना का जो प्रभाव अनजान मे भी होता है, वह मिट नहीं सकता। क्या ऐसे विद्यार्थी नहीं है जो अपने जीवन के आरम्भ मे हसी उडाने वाले ही रहे है परन्तु आगे चल कर वे ही सामूहिक प्रार्थना के दृढ़विश्वासी बन गये ? सामूहिक प्रार्थना मे जिन लोकों को विश्वास नहीं है, और जो इस मे सुख को ढूढते हैं प्राय उन सभी का यही अनुभव है। सभी लोग जो गिरजाघरों, मन्दिरों, या मसजिदों मे एकत्र होते हैं हसी करने वाले या आक्षेप करने वाले नहीं है। वे सच्चे स्त्री पुरुष है। उनके लिये सामूहिक प्रार्थना एक दैनिक स्नान है—उनके जीवित रहने को एक अनिवार्य पदार्थ है। ये पूजा के स्थान ऐसे नहीं है जो व्यर्थ है और सहसा ही मिटा दिये जायगे। अभी तक उन पर जितने भी आक्रमण हुए है उनको उन्होंने सहन किया है और अन्तिम समय तक आगे भी वे ऐसे ही करते रहेंगे।

—यग इण्डिया : सितम्बर २३,१९२६ ई०

निरर्थक जाप

प्रश्न—सभी स्वीकार करते है कि मशीन की तरह बार बार प्रार्थना करते रहना निरर्थक है। वह आत्मा के ऊपर नींद लाने का काम करेगा। मुझे प्राय. आश्चर्य होता है कि आप दैनिक

नियम के रूप में प्रातः सायं उन ग्यारह प्रतिज्ञाओं को क्यों दुहराने के लिये प्रोत्साहन देते हैं? क्या इस कारण से लड़कों की दैनिक चेतना मन्द न हो जायगी? क्या ये प्रतिज्ञायें अच्छे उपायों से चालू नहीं की जा सकती हैं?

उत्तर—जाप यदि मशीनों की तरह नहीं किया जाय और विवेक पूर्वक हो तब तो आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न करेगा। इस प्रकार मैं माला को भी ढोंग नहीं मानता हूँ। वह इधर उधर भटकते फिरने वाले मन को शांति पहुचाने मे सहायता करती है। प्रतिज्ञाओं का प्रति दिन दुहराया जाना एक अन्य श्रेणी मे आता है। उससे एक सच्चे साधक को उठते-बैठते, सोते-जागते ग्यारह शपथों की याद बनी रहती है, जो उसके जीवन को ठीक प्रकार से चलाती है। नि सन्देह यदि उसका जाप मशीन की तरह हुआ तो व्यर्थ सिद्ध होगा। केवल जाप से ही उसे लाभ होगा—यह बात धोखे की है। आप पूछ सकते है कि प्रतिज्ञाओं को दुहराया ही क्यों जाय? यह तो आप जानते है कि आपने ही उन शपथों को लिया है और ऐसी आशा की जाती है कि आप उन पर दृढ रहेंगे। इस युक्ति मे कुछ बल है। परन्तु अनुभव से प्रतीत हुआ है कि मन से विचार पूर्वक जाने पर कोई भी निश्चय दृढतर बनता है। निर्बल मन और आत्मा को प्रतिज्ञायें उसी प्रकार सहायता पहुँचाती है जिस प्रकार दुर्बल शरीर को शक्ति की औषध। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर को शक्ति की औषध की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार प्रतिज्ञाओं और उनके जाप के बिना ही एक शक्ति-शाली मन वाला मनुष्य अपना स्वास्थ्य स्थिर रख सकता है। फिर भी प्रतिज्ञाओं की जांच करने पर यह प्रतीत होगा कि हम मे अधिकांश ऐसे निर्बल मनुष्य है कि जिन्हें उनकी सहायता की आवश्यकता है।

—हरिजन मई २७, १९३६ ई०

वास्तविक अर्थ

आवेश मे आकर एक प्रश्नकर्त्ता इस प्रकार लिखते है'—

"मुझे डर है कि आपके सितम्बर २३ के 'यग इण्डिया' मे ईश्वरीय प्रार्थना पर जो आपने अपने विचार प्रकट किये है, उन मे कुछ विवादास्पद बाते है। लेख के अन्त मे, गिरजाघरों, मन्दिरों व मसजिदों के विषय मे लिखते देते हुए आप कहते है, "कि ये स्थान व्यर्थ नहीं है जो कि आँधी के एक झोंके मे उड़ा दिये जायगे। उन्होंने अभी तक कई आक्रमणों को सहन किया है, और आगे भी वे अन्तिम समय तक सहन करते रहेंगे।"

"इसे पढ़ कर मैने सोचा कि किन के आक्रमण ? नि सन्देह जितने आक्रमण एक दूसरे के प्रार्थना स्थलों पर हुए है वे ईश्वर मे श्रद्धा रखने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के द्वारा हुए हैं, न कि नास्तिकों, ठट्ठेबाजों या अविश्वासियों द्वारा। यथार्थ मे अधिकतर, यदि सब नहीं तो, जिन आक्रमणों का आप ने सकेत किया है वे आस्तिकों के द्वारा ही हुए हैं और अपने अपने ईश्वर के बडप्पन को और प्रतिष्ठा को बढाने के लिये हुए है। उदाहरण दे करके मै आपके सांसारिक इतिहास के ज्ञान का अपमान नहीं करना चाहता।

"दूसरी बात जिस पर कि मैने विचार किया वह यह है—क्या यह बात सच है—क्या ऐसा कहना बिल्कुल ठीक है कि प्रार्थना के स्थानों ने सभी आक्रमणों को सहन कर के भी अपनी सत्ता को बनाये रखा है ? फिर भी उसका उत्तर होगा—बिल्कुल नहीं। काशी को ही देखिये—महात्मा बुद्ध से भी पहले का, शताब्दियों पुराना जहाँ विश्वनाथ जी का मन्दिर खड़ा था—उसी पवित्र नगरी मे उसी मन्दिर के ईंट व पत्थरों से 'जिदा पीर' 'सुलतान-उल-औलिया' ने एक प्रसिद्ध मसजिद

खड़ी कर रखी है—यह है काम एक कट्टर साम्प्रदायिक राजा औरंगजेव का। और सुनिए, नास्तिक अँग्रेजों ने नहीं, परन्तु कट्टर सम्प्रदायवादी इब्न साउद और उसके वहावी साथियों ने हज्ज (Hedjaz)—मुसलमानों का तीर्थस्थान—को इन्हीं दिनों मे ध्वस्त कर दिया था, जिस के लिये भारतीय मुसलमान बुरी तरह दु खी हो रहे हैं और जिसे दुनिया के अन्य सभी मुसलमान राजाओं को छोड़ कर केवल हैदरावाद के निजाम ने ही अपने पैसे से ठीक करवाने का एक निरर्थक प्रयत्न किया है।

महात्मा जी, क्या ये वातें आप के सामने कुछ भी मूल्य नहीं रखती हैं?

ये वातें मेरे लिए वहुत वड़ा महत्त्व रखती हैं। वे नि सन्देह मनुष्य के जगलीपन का प्रदर्शन करती हैं। परन्तु वे मुझे पवित्र वनाती हैं। वे मुझे असहिष्णु होने के विरुद्ध चेतावनी देती हैं। और वे मुझे विरोधी के प्रति और सहनशील वनाती हैं। वे मनुष्य की तुच्छता को प्रकट करती हैं और इस प्रकार उसे प्रार्थना के लिये विवश करती हैं, यदि वह उसे स्वयं इच्छा से नहीं चाहता है। क्या इतिहास में ऐसे दृष्टान्त नहीं हैं कि मनुष्य का अभिमान चूर चूर होकर मट्टी मे मिल गया है। और उसने खुदा के सामने घुटने टेक दिये हैं, उसने उसके पैरों को रुधिर के आँसुओं से धोया है और उसके चरणों के नीचे मट्टी वन कर रहने की प्रार्थना की है? सचमुच यह पत्र तो मारे डालता है, परन्तु उत्साह, प्रेरणा उत्पन्न करता है।

प्रश्नकर्त्ता जो कि 'यग इण्डिया' को नियम से पढ़ता है, इस वात को भली भाति जान ले कि मेरे लिये प्रार्थना-स्थान न केवल ईंट व चूना ही है, मै उन्हें सचाई की छाया माने हुए हूँ। जितने भी गिरजे व मदिर व मसजिद गिरा दिये गए हैं, उनके स्थान पर सैकडों नये वन चुके हैं।

प्रार्थना की आवश्यकता के विषय मे इस प्रकार की युक्ति अनुचित है कि विश्वासियों ने अपने धर्म मे विश्वास रखा, परन्तु वहुत से प्रसिद्ध धर्म स्थान मट्टी मे मिला दिये। मैं इसी को पर्याप्त समझता हूँ, और यह मेरी युक्ति के लिये पर्याप्त है, कि मैं इस वात को सिद्ध कर दूँ कि ससार मे ऐसे मनुष्य हो चुके है और है (आज भी) कि जिनके लिए प्रार्थना ही जीवन का भोजन है। मै प्रश्नकर्त्ता से इस वात के लिये समर्थन करता हूँ कि वह मस्जिदों, मन्दिरों और गिरजाघरों मे चुपचाप जाने का अभ्यास डाल ले और मन मे पहले से ही कोई विचार जमा न ले। तो उसे प्रतीत हो जायगा, जैसा कि मुझे प्रतीत हुआ कि उन मे कोई विशेपता अवश्य है जो हृदय पर छाप डालती है और जो वहाँ जाते है उन के विचारों को परिवर्तित कर देती है। वह न तो दिखावे के लिये, न लज्जा के लिये और न डर के कारण परन्तु केवल भक्ति के कारण से वहां जाते है। उसका विश्लेपण नहीं किया जा सकता है।

कुछ भी हो, सच तो यह है, कि पवित्र मन के मनुष्य वर्तमान तीर्थों पर जाते है, चाहे वे आज पाखण्ड, ढोंग यहां तक कि दुराचार के अड्डे वन चुके हैं फिर भी वे वहाँ से पूजा के लिये अधिक पवित्र होकर लौटते है। इसी कारण से भगवद्गीता मे दृढता से विश्वास दिलाया गया है कि "जिस भावना से मनुष्य मेरा पूजन करता है उसी मे मैं उसे कृतार्थ करता हूँ।"

प्रश्नकर्ता ने जिन वातों का संकेत किया है, वे नि सन्देह हमारी वर्तमान दुर्वलताओं को प्रकट करती हैं और जिनसे छुटकारा पाने के लिये हमे जितना शीघ्र हो प्रयत्न करना चाहिये। यही ढंग है धर्म को शुद्ध वनाने का—विचारों को ऊँचा उठाने का। उतना आवश्यक सुधार असशय ही होने वाला है। ससार को यथार्थ मे समझने की दृढ़ भावना सभी के मन मे होनी चाहिये—और मुझे स्पष्ट कर देना चाहिये कि जिन सुधारों को हम आचरण मे लाना चाहते है उनके लिये एक

भावपूर्ण प्रार्थना की आवश्कता है उसी के द्वारा आत्मा की सच्ची पवित्रता हो सकती है। क्योंकि मनुष्य के हृदय की पूर्ण शुद्धता हुए बिना पारस्परिक सहानुभूति और सद् भावना कभी सभव नहीं।

—यग इण्डिया : नवम्बर ४,१६२६ ई०

शब्दों का अत्याचार

एक प्रश्नकर्ता २३ सितम्बर के 'यंग इण्डिया' मे प्रकाशित हुए मेरे एक लेख—'प्रार्थना मे अविश्वास' पर इस तरह लिखते है —

"आप अपने ऊपर बताये लेख मे 'बालक' या अपने आप की ऊँची विचार शीलता पर धब्बा लगाते है। यह सच है कि जो वर्णन उस पत्र मे प्रश्नकर्ता ने किये है वे सभी प्रसन्नता देने वाले नहीं है। परन्तु उनके विचारों की स्पष्टता पर कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। यह भी स्पष्ट है कि वह 'बालक' नहीं है—जैसा कि उस शब्द का अर्थ समझ लिया गया है। मुझे बहुत आश्चर्य होगा यदि वह बीस वर्ष से कम आयु का हो। यदि वह कम आयु का है तोभी उसका मानसिक विकास बहुत अच्छा है। इसलिए 'एक बालक ऐसा तर्क नहीं कर सकता' इस दृष्टि से उस पर विचार नहीं किया जा सकता। पत्र का लेखक एक तार्किक है, जब कि आप एक श्रद्धालु हैं। दोनों दो प्रकार के परिपक्व विचारों के व्यक्ति है। दोनों तर्क के ढग पुराने है। एक का कथन है—'मुझे समझादो तो मै विश्वास कर लूँगा'—दूसरे का कहना है 'विश्वास रक्खो तो बात आप से आप समझ मे आजायगी।' पहली बात तर्क को पुष्ट करती है और दूसरी अधिकार पर आश्रित है। प्रतीत होता है कि आपके विचार मे नास्तिकता नवयुवकों के मन की एक थोडे समय रहने वाली

स्थिति है और आगे—पीछे इनमे श्रद्धा उत्पन्न होती ही है। आपके विचार के पक्ष मे स्वामी विवेकानन्द का दृष्टान्त सर्वथा स्पष्ट है। इस लिये आप उस 'बालक' को उसकी भलाई के लिये 'प्रार्थना करना' इतना आवश्यक बताते है जितना औषधि के लिए पथ्य आवश्यक होता है। आपकी युक्तिया दोहरी है। पहली बात तो यह है कि प्रार्थना अपने-आप मनुष्य को उसकी तुच्छता का स्मरण कराती है और काल्पनिक परमेश्वर के बड़प्पन और अच्छाई का भी स्मरण कराती है। दूसरी बात है इसका उपयोग। यह उन लोकों को शान्ति पहुँचाती है जो शान्ति पाना चाहते है। मै दूसरी युक्ति को पहले स्पष्ट करूँगा। यहाँ पर 'प्रार्थना' को निर्बलों के लिये एक प्रकार की 'सहारे की लकडी' कहा गया है। जीवन की परीक्षायें इस प्रकार की होती है और उनकी शक्ति मनुष्य की युक्तियों के खण्डन की इस प्रकार की है कि बहुत से मनुष्य ऐसे है जिनको कभी कभी प्रार्थना और श्रद्धा की आवश्यकता होती है। उनका इसे पाने का अधिकार है और उन्हे सुगमता से यह प्राप्त भी होती है। परन्तु प्रत्येक समय मे कुछ सच्चे तार्किक हुए है और होते आए है— यद्यपि बहुत ही कम ऐसे हुए है जिन्हे दोनों की अपेक्षा न रही हो। ऐसे भी कुछ लोग है जो कट्टर सशय वाले तो नहीं है, परन्तु धर्म के प्रति उपेक्षा रखते है।

जैसे कि सभी लोकों को तो अन्त में प्रार्थना सहायता की आवश्यकता नहीं रहती और वे लोक जिन्हे कि इसकी आवश्यकता प्रतीत होती है, उन्हे प्रार्थना करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है और आवश्यकता आने पर वे करते भी है। प्रार्थना मे उपयोग की दृष्टि से बल प्रयोग नहीं हो सकता। किसी व्यक्ति की शारीरिक अथवा मानसिक उन्नति के लिए शारीरिक व्यायाम अथवा शिक्षा के लिये बल दिया जा सकता है। परन्तु नैतिक विकास के लिये ईश्वर में श्रद्धा और प्रार्थना के लिए ऐसा बलप्रयोग नहीं किया जा सकता। ससार के बडे बडे नास्तिकों में कुछ तो

ऐसे हुए है, जिनमे उच्च श्रेणी की नैतिकता पाई गई। ऐसे लोकों के लिए प्रार्थना का समर्थन केवल प्रार्थना ही के लिए होगा, अपनी नम्रता का प्रकाशन ही रहेगा वही जो कि आपकी पहली युक्ति है। इस नम्रता की पराकाष्ठा चुकी है। ज्ञान का विस्तार इतना हो चुका है कि कभी २ बडे बडे विज्ञान विशारदों तक के छक्के छूटा करते है और वे बडे नम्र बन जाते है। परन्तु उनका मुख्य कार्य तो किसी बात की गम्भीर खोज का ही है—उन्हें अपनी शक्ति का उतना ही भरोसा रहता है, जितना प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का। यदि ऐसा न होता तो हम लोक अंगुलियों द्वारा ही पृथ्वी को खोद कर कद-मूल खोजते रहते—इतना ही नहीं, हमारा भूमि पर से लोप होगया होता।

'बरफ के युग मे जब कि मनुष्य शीत से मरते थे अग्नि की खोज जब पहले पहल हुई तो आप जैसे ही उस समय के लोकों ने उसकी खोज पर इस तरह ताने कसे होंगे "कि तुम्हारी योजनाएं व्यर्थ हैं, वे ईश्वर की शक्ति और उसके क्रोध के सामने कोई महत्त्व नही रखतीं।" अब मे तो केवल विनीत ही ईश्वर के दरबार मे पहुँच पा सकेंगे। हम नही कह सकते कि उनके लिये ऐसा ही होगा, परन्तु इस भूमि पर तो उनका भाग सुरक्षित हो चुका। मुख्य बात पर आइये, आप इस पर बल देते है कि 'भरोसा रखो और श्रद्धा उत्पन्न हो जायगी'। यह बात सत्य भी हो तो भी इतनी भयकर है कि इसी तरह की शिक्षाओं ने ससार मे भारी साम्प्रदायिक पागलपन की नीव डाल दी है। यदि बचपन से ही इस प्रकार की शिक्षायें मिलती रहें और एक लम्बे समय तक उन्ही को दुहराते रहे तो अधिकाश मनुष्य ऐसे बन जायगे जो किसी भी बात पर भरोसा करने लग जायगे। इसी तरह तो हिन्दुओं मे धर्मान्धता और मुसलमानों मे कट्टरता ने जड पकडी है। नि:सन्देह इन दोनों धर्मों मे थोडे से लोक ऐसे भी हुए हैं जिन्हे इस तरह के लादे हुए विचारों से घृणा हो चुकी है। क्या आपको यह ज्ञात

नहीं है कि यदि हिन्दू और मुसलमान उस आयु तक अपने धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना बन्द रक्खें, जिस तक कि वे उन्हें ठीक समझने के योग्य न हो जायँ, तो वे अपनी धार्मिक पुस्तकों की शिक्षाओं को अन्धे बन कर नहीं मानेंगे और उनके लिये लड़ना बन्द कर देंगे? हिन्दू मुस्लिम झगड़ों का निराकरण तो संसार की शिक्षा से होगा। परन्तु आप इस उपाय को पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि आपके विचार ही इस से मेल नहीं रखते।

"इस देश में वीरता परिश्रम और त्याग का जो आपने एक अद्वितीय आदर्श उपस्थित किया है उसके लिये तो हम आपके बड़े ऋणी हैं। यह ऐसा देश था जहाँ के लोक सदा ही डरपोक बने रहते थे। परन्तु जब आपके कार्यों पर चतुर्मुखी दृष्टि डाली जायगी तो कहना पड़ेगा कि आपके प्रभाव ने इस देश के मानसिक विकास को बड़ी हानि पहुँचाई।"

मैं 'बालक' शब्द का अभिप्राय नहीं जानता। साधारणतया जैसा कि उसका अर्थ समझा जाता है' यदि २० वर्ष के लड़के को 'बालक' नहीं कहा जाय तो। तोभी मैं तो स्कूल में पढ़ने वाले सब व्यक्तियों को लड़के व लड़किया ही कह कर पुकारूँगा चाहे वे किसी भी उम्र के क्यों न हों। परन्तु उस विद्यार्थी के लिये तो चाहे लड़का हो या मनुष्य, मेरी युक्ति ज्यों की त्यों ही लागू रहेगी। एक विद्यार्थी सिपाही के समान है (और एक सिपाही चालीस वर्ष का भी हो सकता है) जो कि अनुशासन के विषय में विवाद नहीं कर सकता, जब कि उसने उसके अधीन अपने आप को सौंप दिया है और उसमें रहना स्वीकार किया है। एक सिपाही किसी सेना में रह कर मनमाने तौर से नहीं बरत सकता और न वह दी गई आज्ञा को ही टाल ही सकता है। उसी प्रकार एक विद्यार्थी चाहे वह कितना ही बुद्धिमान और बड़ी आयु का क्यों न हो, किसी स्कूल या कालेज में प्रविष्ट होते समय वह

के अनुशासन को तोडने के अधिकार को खो देता है। इसका यह अर्थ नहीं कि विद्यार्थी को अयोग्य या अविवेकी मान लिया गया है। अनुशासन मे स्वेच्छा से आने के लिये उसके विवेक को सहायता पहुँचती है। परन्तु मेरा प्रश्नकर्ता तो अपनी इच्छा से ही शब्दों के अत्याचार के भारी जूए को लादे हुये है। वह ऐसे प्रत्येक काम मे बल प्रयोग को पाता है, जो कि करने वाले को रुचिकर नहीं है। परन्तु बल और दबाव तो रहेगा ही। हम स्वेच्छा से स्वीकार किये हुये और अपने पर दबाव को आत्म-सयम कहते है। हम उसकी अभिलाषा रखते है और उसके नीचे उन्नति करते है। परन्तु वह बल पूर्वक, जिसे कि हमे प्राणों की बाजी लगा कर भी मिटा देना है, हम पर हमारी इच्छा के विरुद्ध लगाया हुआ एक असह्य बन्धन है जो हमे प्राय नीचे गिराता है और हमारी प्रतिष्ठा को नष्ट करता है—हमारी मनुष्यता और बालक पन को समाप्त कर देता है। प्राय सामाजिक बन्धन अच्छे होते है और यदि हम उन्हे तोडते है तो हम अपनी ही हानि करते है। अपमानकारी आज्ञाओं को मानना दुर्बलता और भीरु पन है। उससे भी अधिक भयंकर है अपने चारों ओर के असख्यों प्रलोभनों और वासनाओं मे फसे रहना। वे यो प्रति क्षण हमारे जीवन को अपना दास बनाए रखना चाहती है।

परन्तु प्रश्न कर्ता के सम्मुख एक अन्य शब्द भी है जो उसे दाबे हुए है। वह शब्द है बुद्धिवाद या 'सोच विचार'। अच्छा, उसकी पूर्ण मात्रा मुझे पूरी मिल चुकी है। अनुभव से मुझे वह विनय प्राप्त हो चुका है कि जिसके द्वारा 'सोच विचार' और बुद्धिवाद की सीमा नियत की जाय। जिस तरह कोई पदार्थ बुरे स्थान पर रखने से गन्दा बन जाता है, उसी प्रकार 'सोच-विचार' को बुरे ढग से प्रयोग मे लिया जाय तो पागलपन मे पलट जाता है। यदि ठीक ढग से 'सोच-विचार' को प्रयोग मे लिया जाय तो कोई हानि नही है।

बुद्धिवादी प्रशंसा के योग्य है, परन्तु बुद्धिवाद अपने आप को सर्व शक्तिमान मानने लग जाय तो एक भयंकर भूत का काम करेगा। बुद्धिवाद को ही ईश्वर मान बैठना उतना ही बुरा है जितना कि ईंट और पत्थर को ईश्वर मान बैठना।

प्रार्थना की आवश्यकता को कौन से बुद्धिवाद ने ढूंढ निकाला? वह तो अभ्यास से ही समझ मे आई है। ससार की साक्षी तो ऐसी ही है। कार्डिनल न्यूमेन ने तर्क पर कभी विश्वास नहीं किया। परन्तु प्रार्थना को उसने ऊंचा स्थान दिया, जब कि उसने विनय पूर्वक गाया 'मेरे लिये एक कदम पर्याप्त है। शंकराचार्य तो तार्किकों और बुद्धि-वादियों का शिरोमणि था। ससार के साहित्य में शंकराचार्य के दर्शन-शास्त्र की कोई समता नहीं कर सकता। परन्तु उन्होंने भी प्रार्थना और श्रद्धा को ही सब से ऊंची पदवी दी है।

लेखक ने अपने सामने होने वाली उड़ती और विक्षोभजनक घटनाओं से ही एक सामान्य नियम बना लिया है। परन्तु इस पृथ्वी पर प्रत्येक वस्तु का दुरुपयोग भी हो सकता है। मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक पदार्थ में बुराई ढूंढी जा सकती है। नि सन्देह धर्म को इतिहास में होने वाले कुछ भयानक अपराधों के लिये उत्तरदायी ठहराया जाता है। परन्तु उस में धर्म का दोष नहीं है, मनुष्य के अंदर रहने वाले जोरदार पशु (शैतान) का है। उसने अपनी पुरानी शैतानी को अभी तक नहीं छोड़ा है।

मैं तो ऐसे एक भी बुद्धिवादी तार्किक को नहीं जानता, जिसने सरल श्रद्धा से कोई काम नहीं किया और प्रत्येक कार्य को केवल तर्क के सहारे ही किया हो। परन्तु हम सब यह जानते हैं कि लाखों मनुष्य थोड़ा-बहुत अच्छा जीवन बच्चों की तरह ईश्वर में विश्वास रखते हुए ही व्यतीत करते हैं। वही विश्वास प्रार्थना है। वह 'बालक'

जिसके पत्र पर मैंने अपना लेख लिखा है उन्हीं लोगों मे से एक है। और वह लेख उसे और उसके साथी जिज्ञासुओं को दृढ़ बनाने के लिये लिखा गया था, न कि लेखक के विचार के अनुसार तार्किकों की प्रसन्नता में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से।

परन्तु वह तो ससार के नवयुवकों को अपने माता पिता व अध्यापकों द्वारा प्राप्त किए हुए झुकाव से भी लडाई लडता है। वह तो प्रतीत होता है कि, काल्पनिक जगत मे विचरने वालों की सदा की रुकावट है (यदि कोई एक है)। केवल ससार के भौतिक वाद की शिक्षा भी बच्चों के मन मे एक प्रकार की कृत्रिमता (फैशन) उत्पन्न करने की ही बात है। लेखक ने यह बात कहकर काफी भल मनसाहत दिखाई की है कि शरीर और मन को इस तरह सिखाया जाय व तैयार किया जाय कि उसे अपनी आत्मा का पूर्ण ध्यान रहे कि उसी के द्वारा उसका शरीर और मन विकसित होते है। उसे परवाह नहीं है या शायद उसे उसके होने मे ही सन्देह है। किन्तु उसकी अश्रद्धा उसे कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती। वह अपनी नासमझी के बुरे परिमाणों से छुटकारा नहीं पा सकता। क्योंकि कोई भी मानने वाला मनुष्य लेखक की ही युक्ति पर से ऐसा क्यों न मानले और कह दे कि जिस प्रकार दूसरे लोग शरीर और मन पर प्रभाव डाल सकते है, उसी प्रकार वह लडकों और लडकियों की आत्मा पर भी प्रभाव डाल सकता है। जब सच्चे धर्म का प्रेम प्रबल होगा तब धार्मिक शिक्षा की बुराइयाँ अपने आप लुप्त हो जायंगी। धार्मिक शिक्षा से वञ्चित रखना ठीक वैसा ही है जैसा कि किसी खेत को विना जोते हुए रखना। किसान की नासमझी से ऐसा होता है और जिसका परिणाम यह होता है कि सारा खेत घास व कास से भर जाता है।

जिस लेख पर विचार हो रहा है, उसके सबन्ध मे अपने पुरखाओं की बड़ी बडी खोजों पर लेखक ने जो आक्षेप किये है वे सर्वथा अयुक्त

है। मैं नहीं जानता कि किसी भी मनुष्य ने इन खोजों के लाभ या उपयोगिता के विषय मे किसी प्रकार की आपत्ति की है। साधारण तया वे ही तो ऐसी बातें हैं जिन मे मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग कर सकता है और उसे उन्नति पर पहुँचा सकता है। किन्तु हमारे पूर्वजों ने अपने जीवन से प्रार्थना और श्रद्धा जैसी बडी बातों को पृथक् नहीं रखा। बिना श्रद्धा और प्रार्थना के कार्य ठीक उस बनावटी फूल के समान हैं, जिसमे सुगन्ध का नाम नहीं है। मैं बुद्धि के विरोध मे नहीं बोल रहा हूँ, परन्तु मैं उस बल की ओर ध्यान खींचता हूँ जो हम मे विद्यमान है, और जिसके कारण बुद्धि भी पवित्र बनती है।

—यंग इंडिया अक्टूबर १४,१९२६ ई०

शाश्वत विरोध

एक मित्र लिखते हैं—'अहिंसा की गुत्थी' के शीर्षक का लेख जो अक्टूबर ११ के 'यंग इंडिया' मे छपा है, उसमे आपने बडी ओजस्विनी भाषा मे बताया है कि भीरुता और अहिंसा दोनों एक दूसरी के सर्वथा विरुद्ध है। आपके लेख मे एक भी सन्देहजनक शब्द नहीं है। परन्तु क्या मैं आपसे इस बात की प्रार्थना कर सकता हूँ कि आप हमे यह बात बतला दें कि भीरुता मनुष्य की प्रकृति से कैसे दूर की जा सकती है? मैं तो देखता हूँ कि सभी के चाल-चलन उनकी प्रकृति के अनुसार बने हुए है। हम अपनी पुरानी आदतों से कैसे छुटकारा पा सकते है? साहस विचारशीलता और कर्मशीलता की नई आदतों को किस प्रकार बना सकते है? मै इस बात को मानता हूँ कि आदतें मिटाई भी जा सकती है और किसी भी व्यक्ति मे अधिक अच्छी और ऊँची आदतें उत्पन्न भी की जा सकती है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपको प्रार्थना अनुशासन और अभ्यास (मश्क) का पूर्ण ज्ञान है, जिसके द्वारा किसी

भी व्यक्ति की काया पलट दी जा सकती है। क्या आप उनके विषय में कृपा करके हमे कुछ बतलायॅगे ? हम चाहते है कि इस सबन्ध मे आप अपनी जानकारी और सम्मति 'यंग इण्डिया' के किसी अक मे प्रकट करें। कृपा कर के हमे प्रार्थना और काम करने की वह शैली बतला कर सहायता पहुँचायॅ जिसके द्वारा मनुष्य अपने-आप को सुधार सकता है।

यह प्रश्न उस सदा के युद्ध की ओर निर्देश करता है, जिसका वर्णन इतिहास की आड में 'महाभारत' में बडी उत्तमता से किया गया है, और जो प्रतिक्षण लाखों मनुष्यों के हृदय मे चला करता है। मनुष्य का विशेप कार्य तो यह है कि वह अपनी पुरानी आदतों पर विजय प्राप्त करे, अपनी बुराइयों को दूर करे और उनके स्थान पर अच्छाइयों को धारण करे। यदि धर्म इस प्रकार के विजय को पाने की शिक्षा नहीं देता, तो फिर वह हमें कुछ भी नहीं सिखाता। परन्तु इस के लिये अर्थात् जीवन के सच्चे पुरुषार्थ के लिये सफलता प्राप्त करने का कोई राजमार्ग नहीं है। कदाचित् भीरुता तो सब से बुरा दोप है जिसमे हम फस जाते है और कदाचित् वह सबसे प्रबल अत्याचार भी है। नि सन्देह रक्तपात व वैसी ही बातों से वह अधिक हानिकर है, जो कि उत्पात के नाम से साधारणतया प्रसिद्ध हैं। क्यों कि इस का कारण ईश्वर में श्रद्धा का आभाव और उसके गुणों का अज्ञान है। परन्तु मैं दुख से स्वीकार करता हू कि प्रश्नकर्ता जिस प्रकार की जानकारी व सम्मति भीरुता और उसी प्रकार की अन्य बुराईयों को दूर करने के सबन्ध मुझ से पाना चाहता है, उसके देने की योग्यता मुझ में नहीं है। परन्तु मै अपना ही दृष्टान्त दे सकता हूँ। मैं कह सकता हूँ कि भीरुता और अन्य पुरानी बुराइयों को दूर करने के लिये मनुष्य के पास एक ही अमोघ शस्त्र है और वह है हृदय से की जाने वाली प्रार्थना। प्रार्थना एक असम्भव वस्तु हो जाती है, यदि मनुष्य मे रहने वाले ईश्वर मे उस की सच्ची श्रद्धा न हो।

ईसाईपन और इस्लाम इसी को ईश्वर और शैतान के बीच होने वाली भीतरी, न कि बाहरी लड़ाई कहते हैं। जोरोस्ट्रीयन धर्म इसी को अहुर्मज्द और एहरीमन के बीच होने वाला संग्राम बतलाता है। हिन्दू धर्म इसी को दैवी व आसुरी शक्तियों के बीच होने वाला युद्ध कह कर पुकारता है। हमें इसबात का निर्णय करना होगा कि हम अच्छी शक्ति का या बुरी शक्ति का साथ दें। और ईश्वर से प्रार्थना करना क्या चीज है? वह है ईश्वर और मनुष्य के बीच एक पवित्र सबन्ध बनाना वह सबध जिसके द्वारा वह शैतान के पजों से छुटकारा पा सकता है। परन्तु हार्दिक प्रार्थना ओठों से नहीं निकलती है—वह तो आत्मा से उत्पन्न होने वाली वस्तु है जो प्रत्येक शब्द प्रत्येक कार्य यही नहीं मनुष्य के प्रत्येक विचार से प्रकट होती है। जब कोई बुरा भाव उसे दबा लेता है तो उसे जान लेना चाहिये कि उसकी प्रार्थना ऊपरी प्रार्थना है और उसी तरह वह बुरा शब्द जो उसके ओठों से निकलता है और वह बुरा कार्य जो वह कर बैठता है, उनके सबन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है। बुराइयों की इस त्रिमूर्ति से बचाव पाने के लिये सच्ची प्रार्थना ही एक मात्र ढाल है। इस सच्ची प्रार्थना के लिये पहली बार जो कोशिश की जाती है उसी मे सदा सफलता नहीं हुआ करती है। हमें अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रयत्न करना पडता है हमे अपने मन के विरुद्ध विश्वास रखना पडता है, क्योंकि कई मास हमारे वर्षों के समान होते है। इसलिये हमे असीम धैर्य की आदत डालनी पडेगी—यदि हम प्रार्थना की आवश्यकता का अनुभव करना चाहते है। अधकार छा जायगा निराशा उत्पन्न होगी और उससे भी अधिक बुरी स्थिति आ सकती है परन्तु इन सब से लोहा लेने का हम मे सामर्थ्य होना चाहिये और हमे भीरु नहीं बन बैठना चाहिये। प्रार्थना करने वाले मनुष्य को पीठ दिखाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

मै अप्सराओं की कथा नहीं कह रहा हूँ। मैंने कोई काल्पनिक चित्र नहीं खींचा है मैंने उन मनुष्यों की साक्षियां उपस्थित की हैं जिन्होंने प्रार्थना द्वारा प्रत्येक सकट को पार किया और उन्नति की और उसी के साथ मैंने अपनी व्यक्तिगत साक्षी भी रखी है कि जितना जितना मैं अधिक आयु का होता जाता हू उतना ही उतना मै इस बात को अनुभव करता जाता हू कि श्रद्धा और प्रार्थना का मुझ पर भारी ऋण है। मेरे लिये ये दोनों पदार्थ एक ही अर्थ रखते है। मै अपना कुछ घंटों, दिनों या सप्ताहों का ही अनुभव नहीं बता रहा हू, परन्तु मैं अपने पूरे चालीस वर्ष के अनुभव के आधार पर यह बात कह रहा हू। मुझे निराशा, गम्भीर अन्धकार, उत्साहभङ्ग करने वाली सम्मति सकट की चेतावनी, अभिमान की बातों आदि से निरन्तर टक्कर लेनी पडी है किन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि मेरी श्रद्धा—जो कि मै जानता हू अभी दुर्बल है और जैसी चाहिये वैसी दृढ नहीं हो पाई है—अन्त मे इन सभी कठिनाइयों पर अभी तक विजयिनी हुई है। यदि हम अपने मे श्रद्धा रखें, यदि हम प्रार्थनामय हृदय रखें, तो हम ईश्वर को नही ललचायगे, उसके साथ किसी भी तरह की शर्त नहीं करेंगे। हमे अपने आप को अत्यन्त विनीत बना लेना चाहिये। बडे दादा ने एक अमूल्य सस्कृत का श्लोक अपने देहान्त के कुछ ही दिन पूर्व मेरे पास लिख भेजा था। उसका तात्पर्य यह है कि भक्त इतना विनम्र बन जाता है कि वह अपने आप को भूल जाता है। जब तक हमारी वह स्थिति नहीं होगी, तब तक हम बुराइयों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। ईश्वर चाहता है कि यदि मनुष्य स्पृहणीय सच्ची स्वतन्त्रता का इच्छुक है, तोवह परमात्मा के समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण करदे। और जब वह अपने आप को इस तरह समर्पित कर देता है तो तुरन्त ही वह अपने आप को समस्त प्राणियों का सेवक मानता है। उसी मे उसे प्रसन्नता और आनन्द प्राप्त होता है। वह एक नवीन मनुष्य

बन जाता है और ईश्वर की सृष्टि की सेवा करने में उसे कभी भी थकावट नहीं प्रतीत होती है।

—यंग इन्डिया दिसम्बर २० १९२८ ई०

प्रार्थना क्या है ?

एक चिकित्साशास्त्री का प्रश्न है "प्रार्थना का सब से उत्तम स्वरूप क्या है ?" इस में कितना समय लगाना चाहिये ? मेरी सम्मति में तो न्याय से वर्तना ही प्रार्थना का सब से अच्छा स्वरूप है। और कोई भी व्यक्ति जो सभी के साथ न्याय का वर्ताव रखता है, उसे प्रार्थना करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। कुछ लोग संध्या में बहुत अधिक समय व्यय करते हैं और उन में से ९५ प्रतिशत जो कुछ भी पाठ करते हैं उसका अर्थ तक नहीं जानते हैं। मेरी तो यह सम्मति है कि प्रार्थना प्रत्येक मनुष्य अपनी मातृ भाषा में किया करे। इसी के द्वारा आत्मा पर सब से अच्छा प्रभाव पडता है। मैं तो यह भी कहूंगा कि हृदय से की हुई प्रार्थना एक मिनट की बहुत है। ईश्वर से पाप न करने के सम्बन्ध में जो प्रतिज्ञा की जाती है, उसके लिये उतना समय ही पर्याप्त है।

प्रार्थना का अभिप्राय है ईश्वर से अत्यन्त नम्रता से किसी वस्तु की माग करना। परन्तु प्रार्थना शब्द किसी भी व्यक्ति के कार्य को प्रकट करने के लिये भी किया जाता है। प्रश्नकर्ता के मन में जो बात है, उसे बतलाने के लिये 'पूजा' शब्द अधिक उपयुक्त होगा। परन्तु इस परिभाषा को एक ओर रखिये और देखिये कि लाखों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और यहूदी आदि प्रतिदिन अपने ईश्वर की पूजा के समय क्या करते हैं ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह पूजा अपने स्वामी से मिल जाने के लिये हृदय से निकली हुई चाह है। उसके आशीर्वाद पाने

के लिये एक उत्कण्ठा है। ऐसी मनोवृत्ति का विशेष महत्व है, न कि उन शब्दों का जो या तो बोले जाते हैं या जपे जाते हे। और प्राय जो शब्द वशपरम्परा से ज्यों के त्यों चले आ रहे है उनका और ही प्रभाव होता है, जो यदि मातृ भाषा मे बदल दिये जाय, तो अपना असर खो देगे। कल्पना कीजिये कि यदि 'गायत्री' का गुजराती मे अनुवाद कर लिया जाय तो उसका वही प्रभाव नहीं रहेगा जो कि मूल संस्कृत मे रखने से है। 'राम' शब्द के बोलते ही लाखों हिन्दुओं के हृदय पर एक भारी प्रभाव एका एक उत्पन्न हो जाता है, परन्तु गॉड शब्द कहने से यद्यपि उन्हे अर्थ तो समझ मे आजायगा, किन्तु उनके हृदय पर वह प्रभाव नहीं होगा। एक शब्द एक लम्बे समय से प्रयुक्त होते रहने और साथ ही साथ उसके प्रयोग का सबन्ध पवित्रता के साथ होने पर विशेष प्रभावोत्पादक हो जाता है। इस लिये 'सस्कृत' मे पुराने ढग पर ही मंत्रों और श्लोकों को स्मरण करने की जो प्रणाली है उस के समर्थन में वहुत कुछ कहा जा सकता हे। यह वात सच है कि उसका तात्पर्य ठीक ठीक अवश्य जान लेना चाहिये।

इन पूजा के कार्यो के लिये कोई विशेष समय नियत नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर वह अश्रित है। ये किसी भी मनुष्य के दैनिक जीवन मे वहुमूल्य घडिया होती है। इन पदों का अभ्यास हमे श्रद्धालु और विनम्र बनाने की भावना से करवाया जाता है और हमे यह समझने मे सहायता पहुचाता हे कि विना ईश्वर की इच्छा के कुछ भी नहीं होता और 'हम तो कुम्हार के हाथों की सिर्फ मट्टी ही है'। ये वे क्षण हैं जिन मे एक व्यक्ति अपने तत्काल व्यतीत हुए हुए समय के सबन्ध मे सोचता है, अपनी निर्वलताओं को स्वीकार करता है, क्षमा-याचना करता हे और अधिक अच्छा वनने के लिये शक्ति पाने की अभिलाषा प्रदर्शित करता है। कुछ लोकों के लिये तो ही पर्याप्त हे, किन्तु दूसरों के लिये चौवीस घण्टे भी कम हैं।

जिन्हें अपने भीतर ईश्वर की विद्यमानता का अनुभव होता है उनके लिये तो परिश्रम करना ही पूजा से बढ कर है। उनका तो जीवन ही एक निरन्तर उपासनामय या पूजामय बन जाता है। दूसरे वे लोग जो केवल पाप करने मे ही लगे रहते है, जो विषय भोग मे फसे हुए है, उनके लिये कोई भी समय अधिक नहीं है। यदि वे धैर्य और श्रद्धा रखें और पवित्र बनने की अभिलाषा रखें, तो वे जब तक अपने मे पवित्र ईश्वर की सत्ता का अनुभव न करलें तब तक पूजा करते रहे। हम जैसे मनुष्यों के लिये तो इन दोनों ओर की सीमाओं के मध्य का मार्ग ही ठीक होगा। हम इतने बढे-चढे भी नही है कि यह कह सके कि हमारे सभी कार्य स्वार्थ से परे है, और न शायद हम इतने गिरे हुये ही है कि हम मे केवल स्वार्थ ही स्वार्थ ठूस ठूस कर भरा हुआ है। इसी लिये सभी धर्मों ने दैनिक प्रार्थना के लिये समय नियत कर रखे है। दुर्भाग्य से ये वस्तुए आज कल नाममात्र और प्रथा को निबाहने के लिये ही रह गई है, चाहे वे दिखाने के लिये न भी हों। इस लिये जिस बात की विशेष आवश्यकता है वह है भक्ति के साथ विशेष मनोवृत्ति।

ईश्वर से किसी वस्तु की माग करने के लिये किसी व्यक्ति की प्रार्थना वास्तव मे उस की अपनी भाषा मे ही होनी चाहिये। इस से बढ कर कौनसी माग हो सकती है कि हम प्रत्येक जीव के साथ न्याय का बर्ताव रखे।

—यंग इण्डिया जून १० १९२६ ई०

अपनी विवशता की जानकारी का परिणाम और अन्य सभी सहारों को छोड कर अन्तिम विश्वास ईश्वर पर ही कर लेना ही सच्ची प्रार्थना है।

—यंग इण्डिया नवम्बर २५ १९२६ ई०

जैसा कि मुझे विश्वास है कि मूक और शान्त पूजा किसी प्रकट कार्य की अपेक्षा प्राय अधिक शक्तियुक्त होती है, मैं अपनी असहायता की स्थिति मे निरन्तर इस श्रद्धा से प्रार्थना करता रहता हूं कि एक सच्चे हृदय की प्रार्थना का फल अवश्य ही प्राप्त होता है। और मैं अपनी पूरी शक्ति से एक स्वीकार होने योग्य पूजा का सच्चा साधन बनने का यत्न करता हूं।

—यंग इंडिया सितम्बर १०, १९२७ ई०

जब द्रौपदी ने देखा कि उसके पाचों पति भी उसकी सहायता नहीं कर सकते, तब दुखी होकर कृष्ण से सहायता पाने की पुकार करने लगी, क्योंकि वे ही अनाथों के सच्चे नाथ है और उन्होंने उसकी पुकार को सुन भी लिया। इसी प्रकार मै भी आज अपना काम करूं गा, और भारत के लाखों मूक निवासियों की सहायता के लिये पुकार करूं गा, और मुझे भरोसा है कि एक दिन मेरी प्रार्थना की सुनवाई अवश्य होगी।

प्रश्न—वे नवयुवक जो अपनी नीचवृत्तिओं से लोहा लेते हुए परास्त होते हैं, और आपका परामर्श पाने के लिये आप के पास पहुँचते है उन्हे आप क्या शिक्षा देते है ?

उत्तर—केवल प्रार्थना। प्रत्येक व्यक्ति को पूर्णतया नम्र बन जाना चाहिये और अपने से उच्च शक्ति से बल पाने की माग

प्रश्न—किन्तु जब वे नवयुवक यह शिकायत करें कि उनकी प्रार्थना नहीं सुनी जाती है और उनको ऐसा प्रतीत होने लगे कि उनकी पुकार व्यर्थ ही रहती है तो फिर क्या करना चाहिये ?

उत्तर—यदि कोई व्यक्ति अपनी पूजा का प्रतिफल पाना चाहे तो समझो कि वह ईश्वर को ललचाना चाहता है। यदि पूजा से किसी को संतोष न मिले तो वह प्रार्थना केवल ओठों की प्रार्थना है। यदि प्रार्थना सहायता नहीं पहुंचाती तो अन्य वस्तु सहायता नहीं दे सकती। किन्तु उस व्यक्ति को तत्परता से प्रार्थना करते ही रहना चाहिये। यही तो नवयुवकों को मेरा सन्देश है। अपने आप पर विजय पाने वाली शक्ति है उस पर नवयुवकों को पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये।

प्रश्न—हमारे युवकों के सन्मुख यह कठिनाई है कि विज्ञान और वर्तमान युग के दर्शन शास्त्र की पढ़ाई ने उनकी श्रद्धा को चकनाचूर कर दिया है और इस लिये अश्रद्धा की अग्नि से वे झुलसे हुए हैं।

उत्तर—इस का कारण यह है कि उनके लिये श्रद्धा एक मानसिक प्रयत्न है वह आत्मिक अनुभव नहीं है।

मन जीवन संग्राम में हमें कुछ हद तक आगे बढ़ाता है। परन्तु परीक्षा के अवसर पर वह हमारा साथ नहीं दे सकता। श्रद्धा तर्क से परे की वस्तु है जब आकाश काला दिखाई देता है और जब मनुष्य की बुद्धि काम नहीं देती तब श्रद्धा तपाए हुए सोने की तरह जग-मगाने लगती है और हमारी सहायता करने लगती है। हमारे युवकों को ऐसी ही श्रद्धा की आवश्यकता है और वह तभी प्राप्त होती है जब कि मनुष्य अपने मानसिक घमण्ड को छोड़ देता है और पूर्ण तथा ईश्वर की इच्छा पर ही अपने आप को समर्पित कर देता है।

—यंग इंडिया मार्च २४, १९२९ ई०

प्रार्थना पर चर्चा

सायंकाल का सुन्दर समय था। उद्योग मन्दिर की वह थोडी सी भूमि जिसे आज भी सत्याग्रह-आश्रम के नाम से लोक पुकारते हैं,, उस पर गाँधीजी ने गुजरात से आये हुए छात्रावास के उन विद्यार्थियों के समक्ष पूजा पर एक चर्चा की थी जो कि अहमदाबाद मे छात्र सम्मेलन के अधिवेशन मे सम्मिलित हुए थे। इस सभा मे बडी मात्रा में बडे उत्साह के साथ बच्चों के माता पिताओं ने, सरक्षकों ने, अध्यापकों ने और छात्रावास के व्यवस्थापकों ने भाग लिया था और महत्त्व पूर्ण विषयों पर वाद विवाद भी हुआ था। उन मे से एक विषय यह भी था कि सामूहिक प्रार्थना प्रत्येक छात्रावास मे अनिवार्य ठहरा दी जाय। इस विषय पर थकान आ चुकी थी, सभी लोक इस परिणाम पर बडे वाद विवाद के पश्चात् पहुंचे कि हम लोग ठीक निर्णय (फैसला) नहीं कर पाए है, इसलिये इस विषय पर हमे गाँधीजी की सम्मति लेनी चाहिये और बातचीत करनी चाहिये। और इस से बढकर वे कुछ कर भी नहीं सकते थे। गाँधीजी का तो विश्वास है कि प्रार्थना नित्य प्रति प्रभात मे उठते समय और रात को सोते समय हर हालत मे करनी ही चाहिये। मगर जो दृढ अनुशासन वे उद्योग-मन्दिर मे चलाना चाहते हैं उस ओर कुछ लोगों का बडे आश्चर्य के साथ ध्यान आकर्षित हुआ है और उनकी बात चीत को सुनने के लिये वे उत्कण्ठित हैं। वे डाक्टर होले, जो कि एक प्रसिद्ध एकता के प्रचारक हो चुके है, उनके इस विचार के पक्के मानने वाले है, कि जो बच्चा बचपन से ही यह सीख लेता है कि मैं ईश्वर का बच्चा हूँ और जिसकी सारा रहन-सहन ईश्वर मय होता है, उस मे सभी प्रकार की कठिनाइयों के सहन करने की शक्ति आजाती है। वह जीवन को हँसते-खेलते व्यतीत करता है। उसमे वह बहुत कुछ भलाई का काम भी कर डालता है। परन्तु अपनी बात को समाप्त करते समय उसने यह भी स्वीकार किया कि मैंने अभी तक इस विचार के

अनुसार अपने जीवन को नहीं विताया है, इसलिये जो कमी रह गई है उसको दूर करने के लिये मैं जितना शीघ्र हो सकेगा पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

परन्तु मै पाठकों और उक्त वातचीत के वीच मे खडे रहना नहीं चाहता जो वातचीत उत्साह पूर्ण और स्फूर्ति उत्पन्न करने वाली थी और ज्योंही छात्रों ने शाम की प्रार्थना समाप्त की थी, वह सुनाई गई थी। तव सूरदास का वह पद गाया गया, जिसकी उनके जीवन चरित्र को पढने वाले अच्छी तरह जानकारी रखते है।—"मेरे समान ऐसा कौन तुच्छ होगा, जो कि अपने सिरजनहार को ही भूल चुका है? मैं इतना कृतघ्न हो गया हूँ।"

यहाँ उस वातचीत का थोडे मे वर्णन किया जाता है जो कि गुजराती मे की गई थी —

"मुझे इस वात की प्रसन्नता है कि आप लोक मुझ से प्रार्थना के तात्पर्य को व प्रार्थना की आवश्यकता को समझना चाहते है। मेरी दृढ धारणा है कि प्रार्थना ही धर्म की आत्मा है, और इसलिये मनुष्य की जीवनी मे प्रार्थना को सव से ऊँचा स्थान मिलना चाहिये। कुछ लोक ऐसे भी है जो अपनी वुद्धि के मद मे यह कह देते है कि हमे धर्म से कोई सम्वन्ध नहीं है। परन्तु यह कथन वैसा ही अयुक्त है जैसा कि यह कहना कि मै साँस तो लेता हूँ किन्तु मेरे नाक नहीं है। तर्क से, स्वभाव से, शकुन से—किसी न किसी प्रकार मनुष्य ईश्वरीय शक्ति को अवश्य स्वीकार करता है। वडे से वडा नास्तिक भी नैतिक नियम को मानता है और इस वात को स्वीकार करता है कि उस नियन के अनुसरण से अच्छा परिणाम होता है और उसके तोडने से वुरा फल भोगना पडता है। व्रेडला की नास्तिकता विख्यात है, फिर भी उसने सदा ही अपनी अन्तर्ध्वनि (हृदय की पुकार) पर विश्वास रखा है। इस प्रकार सच वोलने के लिये उसे वड़ी वडी कठिनाइयाँ झेलनी पडी हैं। परन्तु उसे

इसी मे सुख मिलता था और वह कहा करता था कि सचाई ही उसका पुरस्कार है। सचाई से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता, जो उसे प्राप्त होती थी, उस से वह अपरिचित नहीं था। वह सुख सांसारिक सर्वथा नहीं था, परन्तु वह तो ईश्वरीय शक्ति से मिलने के बाद पैदा होने वाला था। इसी कारण से मैं कहता हूँ कि जो मनुष्य धर्म को स्वीकार नहीं करता, वह भी विना धर्म के न तो रहता है और न रह ही सकता है।

"अब मैं दूसरी बात पर आता हूँ अर्थात् प्रार्थना ही मनुष्य का जीवन कहा जा सकता है, क्योंकि यही धर्म का एक मुख्य भाग है। प्रार्थना या तो निवेदनात्मक होगी या अन्तरात्मा की तल्लीनता ही। दोनों अवस्थाओं मे अन्तिम परिणाम वही है। निवेदनात्मक होने की अवस्था मे भी निवेदन आत्मा की शुद्धि और पवित्रता के लिये ही होना चाहिये। वह निवेदन आत्मा के चारों ओर व्याप्त अज्ञान और अन्धकार को मिटाने वाला होना चाहिये। इसलिये जो मनुष्य अपने अन्दर ईश्वरीय शक्ति को उत्पन्न करने की अभिलाषा रखता है उसे चाहिये कि वह प्रार्थना की सहायता ले। परन्तु प्रार्थना कानों को लुभाने वाले या शब्दों को दुहराने वाली वस्तु नहीं है—यह केवल मन्त्रों का जाप ही नहीं है। कितना ही राम नाम का जाप करते जाइये परन्तु वह आत्मा पर यदि कोई प्रभाव नहीं डालता तो सारा जाप निरर्थक है। प्रार्थना मे शब्दों के विना केवल कोरा हृदय अच्छा है अपेक्षा विना हृदय के कोरे शब्दों के। पाठ से प्रार्थना हृदय की उस उत्सुकता से होनी चाहिये, जिसके अन्दर आत्मा के ज्ञान की सच्ची भूख हो। जिस प्रकार एक भूखा मनुष्य भोजन पाकर सन्तोष अनुभव करता है उसी प्रकार एक जिज्ञासु आत्मा मन से निकली हुई प्रार्थना से सन्तोष और आनन्द पाती है। मैं अपने व्यक्तिगत तथा अपने साथियों के अनुभव के आधार बतला सकता हूँ, कि जिसे प्रार्थना के चमत्कार का कभी अनुभव हो चुका है वह कई दिनों तक विना भोजन के रह सकता है परन्तु वह विना प्रार्थना के एक

क्षण भी नहीं रह सकता। क्योंकि बिना प्रार्थना के आन्तरिक शान्ति नहीं मिल सकती।

"यदि यही बात है तो कोई ऐसा भी कहेगा कि हम अपने जीवन का एक एक मिनिट प्रार्थना मे ही व्यतीत करेंगे। इस मे कोई सन्देह नहीं है परन्तु हम भूल करने वाले मनुष्य एक क्षण भर के लिए भी अन्तरात्मा से मिलने और अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करने का प्रयत्न नहीं करते फिर उस ईश्वरीय प्रकाश की निरन्तर उपासना तो बहुत दूरकी बात हो जाती है। इसलिए ससार के विषयों से दूर रह कर कुछ घन्टों तक प्रतिदिन उसके समीप पहुँचने का अभ्यास बनाने के लिए हम प्रयत्न करते है। उस समय हम पूर्णतया इस बात का प्रयास करते है कि हम यह भूल जाय कि हम अपने शरीर के अन्दर ही है। आपने सूरदास का पद सुना है। उसमे आत्मा की वह सच्ची पुकार है जो ईश्वर से मिल जाना चाहती है। हमारी दृष्टि मे वह एक महात्मा थे परन्तु उनकी अपनी दृष्टि मे वे अपने आपको महापापी मानते थे। आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग मे वे हम से कोसों आगे थे परन्तु ईश्वर से पृथक् रहने का उन्हे इतना अधिक दु ख था कि अपनी विवशता और निराशा की स्थिति मे उन्होंने वह राग अपनाया है।

मैंने प्रार्थना की आवश्यकता पर बल दिया है। इसी लिये मैंने प्रार्थना के सार पर अपने विचार उपस्थित किये है। हम लोक अपने साथियों की सेवा के लिये उत्पन्न हुए है, और जब तक हम इस बात को भली भाति समझ न लें तब तक हम उनकी सच्ची उपासना नहीं कर सकते। सदा से ज्ञान और अज्ञान मे झगडा होता आया है, और जो मनुष्य प्रार्थना का आश्रय नहीं लेगा वह अज्ञान के पाश मे ही फँस जायगा। भक्त को अपने मे और बाहर शान्ति मिलती है, किन्तु नास्तिक को सब जगह दु ख उठाना पडता है और वह संसार को भी दु खी बनाता है। मनुष्य की मृत्यु के बाद की स्थिति को छोडिये।

परन्तु उसके जीतेजी ही प्रार्थना का महत्त्व इसी जीवन मे बहुत भारी है। हम अपने दैनिक कार्यों मे प्रार्थना के द्वारा ही नियम, शान्ति और आनन्द उत्पन्न कर सकते है। हम आश्रम वासी जो यहाँ सचाई की खोज मे इकट्ठे हुए है और सचाई का वायु मण्डल बनाने के लिये खडे है प्रार्थना के महत्व को स्वीकार करते है। किन्तु हमने अभी तक इसे सब से बडी वस्तु नहीं माना है। जितना अधिक विचार हमने दूसरे विषयों पर दिया है, उतना तन्मय ध्यान हमने प्रार्थना पर नही लगाया है। एक दिन मै अपनी नींद से जगा और मैने दु ख के साथ अनुभव किया कि मै इस विषय मे अपने कर्त्तव्य को निबाहने मे ढीला हूँ। इसीलिये मै ने कठोर अनुशासन करने के उपाय बतलाए है। और नीचे गिरने की अपेक्षा मै आशा करता हू कि हम इस ओर उत्थान के मार्ग पर है। क्यों कि यह सर्वथा स्पष्ट है। मुख्य मुख्य वस्तुओ पर ध्यान रखिये तो अन्य सभी बातें अपने आप ठीक हो जायेंगी। वर्ग (Square) के एक कोन को बिल्कुल सही कर लीजिए तो बाकी के सभी कोन अपने—आप सही हो जाएँगे।

आप प्रति दिन सब से पहले प्रार्थना कीजिए, दिन भर आत्मा मे लीन रहिये और दिन डूबने पर प्रार्थना कीजिए ताकि रात को गहरी नींद प्राप्त हो सके और बुरे स्वप्नों से बचे रहो। प्रार्थना किस प्रकार की होती है इस की चिन्ता मत करो। इस का स्वरूप कैसा भी रहे—परन्तु यह इस प्रकार की होनी चाहिये जो तुम्हे ईश्वरतत्व से तद्रूप करा सके। स्वरूप कैसा भी हो परन्तु तुम्हारा मन विचलित न होना चाहिये। जब मुंह से प्रार्थना करो तब तुम्हारा मन स्थिर होना चाहिए।

मैने जो कुछ भी तुम्हे कहा है, वह सचमुच यदि तुम्हे जँच गया है तो तुम्हे वहाँ तक शान्ति न होगी जहाँ तक तुम अपने छात्रावास के प्रबन्धकों मे प्रार्थना के लिये लगन उत्पन्न न करो और उनसे अपनी संस्था मे प्रार्थना को एक अनिवार्य अग न बनवालो। हृदय से अपनाया हुआ

बन्धन दासता नहीं है। जो मनुष्य आत्मसंयम से छुटकारा पाना चाहता है वह बुराइयों का दास बन जाता है, परन्तु जो मनुष्य आत्म विजय की आदतों को निभाता है, वही मोक्ष पा सकता है। सारे संसार की वस्तुएं यहाँ तक कि सूर्य, चन्द्रमा और तारे सभी नियम से बँधे हुए हैं। इन नियमों को तोड़ देने पर सारा जगत् क्षण भर में चूर चूर हो जायगा। आप लोक जिन्होंने अपने जीवन को अपने भाइयों की सेवा में बिताने का निश्चय किया है, यदि अनुशासन का पालन नहीं करोगे तो मट्टी में मिल जाओगे। प्रार्थना एक आवश्यक आत्मिक अनुशासन है। हम में और शैतान में इतना ही भेद है कि हम अनुशासन और संयम को मानते हैं और वह नहीं मानता। यदि हमें मनुष्य बननाहै और पशुता से दूर रहना है तो अनुशासन और संयम में रहना ही चाहिये।

—यंग इण्डिया जनवरी ३०, १९३० ई०

प्रार्थना पर वैयक्तिक साक्षी

परन्तु शायद चरखे से भी अधिक ध्यान खींचने वाली वस्तु हमारी सायंकाल की प्रार्थना है। इन मित्रों को प्रभात की प्रार्थना का प्राय पता नहीं लगता क्यों कि वह बहुत जल्दी होती है: परन्तु लगभग सभी प्रकार के भारतीय (जिनकी संख्या ४२ से भी ऊपर है) हिन्दू मुसलमान, पारसी, सिक्ख और इने-गिने योरोपियन शाम की प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं। इन मित्रों में से कुछ के आग्रह पर प्रार्थना के पश्चात् और भोजन के पूर्व पन्द्रह मिनट तक की चर्चा का एक दैनिक कर्म बन चुका है; और उनमें से पहली दो चर्चाओं को मैं 'यंग इण्डिया' के पाठकों के सामने उपस्थित करना चाहता हूँ। प्रतिदिन सायंकाल को गाँधी जी के सम्मुख एक प्रश्न रक्खा जाता है और

उत्तर वे दूसरे दिन सायंकाल को देते है। एक भारतीय यात्री ने जो कि एक मुसलमान नवयुवक था गॉधीजी से निवदेन किया कि आप अपना व्यक्तिगत अनुभव प्रार्थना के विषय मे बताइए। उसने कहा कि जो कुछ भी आप कहे वह केवल सिद्धान्तों पर ही आश्रित न होना चाहिये, परन्तु आपके अपने प्रार्थना से उत्पन्न हुए विचारों और अनुभवों का वर्णन होना चाहिये। गॉधीजी को यह प्रश्न पूरी दिलचम्पी के साथ कह सुनाया।

प्रार्थना मेरे जीवन को बचाती है। विना इसके मै कभी का पागल होगया होता। मेरी 'आत्म कथा' को पढने से मालूम होजायगा कि मुझे अपने वैयक्तिक और राजनीतिक जीवन मे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पडा है। मै थोडी देर के लिये उनमे निराश बन जाता था किन्तु मुझे उस निराशा से प्रार्थना ही छुटकारा दिलाती रही। अब मैं यह भी बता देना चाहता हू कि जिस प्रकार सचाई मेरे जीवन का हिस्सा बन कर रही है उस प्रकार प्रार्थना नहीं रही है। यह तो आवश्यकता के अनुसार उत्पन्न हुई। जब जब मै कष्टों से घिर जाता था, मुझे प्रार्थना मे ही शान्ति और सुख मिलता था। ज्यों ज्यों मेरी श्रद्धा ईश्वर मे बढती चली त्यों त्यों मेरे मन मे प्रार्थना के लिए चाह बढ़ने लगी। बिना प्रार्थना के मुझे जीवन सूना और फीका प्रतीत होने लगा। दक्षिणी अफ्रिका मे मैने ईसाईयों की प्रार्थना मैं भाग लिया किन्तु वह मुझे आकर्षित न कर सकी। मैं उनकी प्रार्थनाओं मे फिर सम्मिलित नहीं हो सका। वे ईश्वर से याचना करते थे, किन्तु मै ऐसा नहीं कर सकता था, इसलिये मै उस मे सर्वथा असफल रहा। आरम्भ मे मुझे ईश्वर और प्रार्थना मे विश्वास नहीं था किन्तु आगे चल कर मुझे मालूम हुआ कि जीवन इनके बिना निस्सार है। उस समय मे मैंने इस बात को अनुभव किया कि जिस प्रकार भोजन हमारे शरीर के लिये एक अनिवार्य वस्तु है उसी प्रकार प्रार्थना भी हमारी आत्मा के लिये आवश्यक है। सच बाततो यह है कि भोजन

भी हमारे शरीर के लिये उतना आवश्यक नहीं है जितना प्रार्थना आत्मा के लिये है। क्यों कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिये कभी कभी उपवास की आवश्यकता होती है; परन्तु प्रार्थना के सबन्ध में उपवास नाम की तो कोई वस्तु ही नहीं है। आपको प्रार्थना का अजीर्ण हो ही नहीं सकता है। संसार के तीन बड़े धर्म-प्रवर्त्तकों ने—बुद्ध, मसीह और मुहम्मद ने स्पष्ट दृष्टान्त उपस्थित किया है कि उन्होंने प्रार्थना के द्वारा ही ज्ञान को प्राप्त किया है, और सम्भवत वे उसके बिना जीवित ही नहीं रह सकते थे। परन्तु लाखों हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों ने जीवन का सुख प्रार्थना के द्वारा ही प्राप्त किया है। क्या तुम यह कहोगे कि वे सभी भ्रान्ति के मार्ग पर थे? मैं सचाई का जिज्ञासु हूँ; फिर भी यदि आप उन्हे झूठा कहेंगे तो मैं कहूँगा कि मुझे उनका यह झूठ पसन्द है—उनके इस झूठ ने मुझे अपने जीवन मे भारी सहारा दिया है और बिना उसकी सहायता के मै एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। उसी के कारण मुझे राजनीतिक विषयों मे भी निराशा के विरोध मे खड़ा होने की शक्ति प्राप्त हुई। मैंने कभी धैर्य नहीं छोड़ा। सचमुच मैंने ऐसे मनुष्य भी देखे है, जिन्होंने मेरी शान्ति की स्पर्धा की है। मैं बताऊँ, वह धैर्य मुझे प्रार्थना से प्राप्त होता है मै विद्वान् तो नहीं हूँ। प्रार्थना के स्वरूप की मुझे चिन्ता नहीं प्रत्येक मनुष्य अपने ढग से प्रार्थना कर सकता है। परन्तु कुछ स्पष्ट निर्धारित मार्ग भी हैं और यह अच्छा है कि उन प्राचीन गुरुओं ने जो मार्ग ग्रहण किये है उन्हीं पर चला जाय। लीजिये इस प्रकार मैंने अपना व्यक्तिगत उदाहरण उपस्थित कर दिया है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह स्वय प्रयत्न करे और जाच करे कि उसे प्रतिदिन की प्रार्थना से क्या फल प्राप्त होता है, इसके द्वारा वह प्रतिदिन नया अनुभव जीवन मे प्राप्त करेगा—ऐसा अनुभव प्राप्त करेगा जिसकी तुलना ससार मे किसी पदार्थ से नहीं की जा सकती।

दूसरे दिन शाम को एक दूसरे नवयुवक ने प्रश्न किया कि "श्रीमान् आपतो ईश्वर मे श्रद्धा रख कर कार्य आरम्भ करते है, परन्तु हम तो उसमे विना विश्वास के ही कार्य करते है। हम तो अविश्वास से प्रारम्भ करने वाले है, हम किस प्रकार प्रार्थना कर सकते है ?"

गाँधी जी बोले—तो फिर यह मेरी शक्ति के बाहर की बात है कि मै आपमे ईश्वर के लिये विश्वास उत्पन्न करदूँ। कुछ वस्तुएं ऐसी है जिनका प्रमाण स्वय प्राप्त होता है—किन्तु कुछ ऐसी भी है जिनका प्रमाण से सिद्ध करना असम्भव है। ज्यामिति के स्वयंसिद्ध सिद्धान्तों की भांति ईश्वर के अस्तित्व का होना सिद्ध है। चाहे हमारा मन वहाँ तक न पहुँच सके—यह हो सकता है। मैं इस पर वाद-विवाद नहीं करूँगा। मन की दौड थोडी बहुत भूल कर सकती है—क्योंकि तर्क के द्वारा कोई भी मनुष्य किसी के हृदय मे ईश्वर की सत्ता के लिये विश्वास नहीं उत्पन्न कर सकता है। क्योंकि वह तो ऐसी वस्तु है जो तर्क से परे है। उसके लिये तर्क व्यर्थ है। अनेक ऐसी बातें हैं, जिन पर सोच कर आप यह जान सकते है कि ईश्वर है—किन्तु उस तरह का स्पष्टी करण देकर मैं आपकी बुद्धि का अपमान करना नहीं चाहता। मै तो यह चाहता हूँ कि आप उसके विषय मे तर्क करना छोड दें और भोले-भाले बच्चे की तरह उसमे विश्वास रखना आरम्भ कर दें। यदि मेरी सत्ता है तो ईश्वर की भी सत्ता है। मेरे लिये उसका होना उतना ही आवश्यक है जितना कि असंख्य दूसरे लोगों के लिये है। इसके सबन्ध मे शायद वे बात करने के योग्य नही है, किन्तु उनके जीवन से आप देख सकते है कि उनके जीवन का यह एक अङ्ग है। मैं आप से केवल यही कहूँगा कि जो श्रद्धा की जड़ आप के मन से निकल चुकी है उसे फिर से स्थापित कर दीजिए। ऐसा करने के लिये आपको वह साहित्य सर्वथा भुला देना पड़ेगा जिसने आपकी बुद्धि को चकाचौंध कर दिया है और जिसने आपको धक्का देकर नीचे गिरा दिया है। श्रद्धा से आरम्भ

कीजिए; वह हमारे विनय का प्रतीक है उसके द्वारा हम यह स्वीकार करते हैं कि हमारी जानकारी अधूरी है और हम इस ब्रह्माण्ड में एक कण के समान हैं। मैं तो कहता हूँ कि हम एक कण से भी छोटे हैं क्योंकि एक एक अणु को प्रकृति के नियम के अनुसार चलना पड़ता है किन्तु हम तो अपने अज्ञान के मद में प्रकृति-नियम को भी ठुकरा देते हैं। परन्तु मेरे पास उन लोगों को समझाने की शक्ति नहीं है जिनमें विश्वास नहीं है।

एक बार आप ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर लीजिए फिर तो प्रार्थना की आवश्यकता छिपी हुई नहीं रहेगी। हमें इस बात का झूठा दावा नहीं रखना चाहिये कि हमारा जीवन ही प्रार्थनामय है और इस लिये हमें किसी नियत समय पर बैठ कर प्रार्थना करने की आवश्यकता ही क्या है। ऐसा दावा तो उन महात्माओं ने भी कभी नहीं किया जिनका सारा समय उसके चिन्तन में ही बीता है। उनका जीवन प्रार्थनामय था, फिर भी हमारी भलाई के लिये—इस बात को हमें स्वीकार करना चाहिये—नियमित समय पर प्रति दिन वे प्रार्थना करते थे और ईश्वर के प्रति सच्चा रहने की सौगन्ध लेते थे। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर को हमारी सौगन्ध की जरूरत नहीं है, परन्तु हमें अपनी प्रतिज्ञायें प्रतिदिन स्मरण रखनी चाहिये और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वैसी स्थिति में हम जीवन में प्रत्येक कल्पनीय संकट से सर्वथा बचे हुए रहेंगे।

—यंग इंडिया, २४ सितम्बर १९३१ ई०

क्वेटा में भूकम्प

जब मनुष्य गिरताहै तो ऊंचा उठाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है। तामिल भाषा में एक कहावत है कि 'वह बेचारों का चारा है'। हृदय को भारी आघात पहुँचाने वाली क्वेटा की दुर्घटना सब का मन कंपा देती है। वहां पुनर्निर्माण को सभी प्रयत्न निरर्थक हुए हैं। इस दुर्घटना की सच्ची स्थिति शायद् कभी ज्ञात भी नहीं होगी। मरे हुए लोक जीवित नहीं होंगे।

मनुष्य को अपने प्रयत्न वहां सदा जारी रखने चाहिये। जो जीवित बचे हैं उनको सहायता पहुँचानी चाहिये। ऐसा पुनर्निर्माण जो हो सकता हो अवश्य जारी रखना चाहिये। यह और ऐसा ही दूसरा कोई कार्य भी हम प्रार्थना के बिना चलता नहीं रख सकते।

परन्तु प्रार्थना करनी ही क्यों चाहिये? यदि ईश्वर विद्यमान है तो जो कुछ घटना हुई है उसे क्या वह नहीं जानता है? क्या उसे अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिये मनुष्य को प्रार्थना की आवश्यकता है?

नहीं, ईश्वर को स्मरण कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो प्रत्येक हृदय में बसता है। उसकी आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं होता है। हमारी प्रार्थना हमारे हृदय की परीक्षा है। वह तो हमें इस बात का स्मरण दिलाती है कि उसकी सहायता के बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते। प्रार्थना के बिना कोई भी प्रयत्न पूर्ण नहीं कहा जासकता; और मनुष्य का बड़े से बड़ा प्रयत्न भी बिना ईश्वर के आशीर्वाद के सफल नहीं हो सकता। प्रार्थना एक विनय पूर्ण पुकार है। इस के द्वारा आत्म-शुद्धि और आत्म-ज्ञान उत्पन्न होता है।

विहार के भूकप के समय जो बात मैंने कही थी उसी को मैं यहां दुहराता हूं। प्रत्येक प्राकृतिक संकट के पीछे ईश्वर की कोई इच्छा

छिपी हुई रहती है। विज्ञान जब पूर्ण उन्नति कर जायगा तब हमें भूकम्प कब और कहां होगा, इस बात का ज्ञान भी पहिले से ही हो जाया करेगा जैसा कि चन्द्र और सूर्य-ग्रहण का पता लग जाया करता है। मनुष्य की बुद्धि की यह एक दूसरी सफलता होगी। परन्तु इस प्रकार की सैंकड़ों सफलताएं भी आत्मा को पवित्र नहीं बना सकेंगी। आत्म-शुद्धि के बिना किसी भी वस्तु का कुछ मूल्य नहीं।

जिस प्रकार बिहार की दुर्घटना को हम भूल चुके हैं उसी प्रकार उसे भी भूल जायगे। जो लोक आत्म-शुद्धि करना चाहते हैं उन से मैं कहूंगा कि वे प्रार्थना में सम्मिलित हों जिस से हम ईश्वर की इच्छा को ऐसी घटनाओं के समय ठीक ठीक समझ सकें, और अवसर आने पर हम विनीत बन कर अपने निर्माता के समक्ष खड़े होने को उद्यत हो सकें, और हम अपने भाइयों के संकट में फिर वे चाहे किसी भी जाति के क्यों न हों, अपना भाग ले सकें।

—हरिजन जून ८ १९३५ ई०

प्रार्थना का तात्पर्य

मैंने क्वेटा की दुर्घटना पर कुछ पंक्तियां इस विचार से लिखी हैं कि जनता ईश्वर के समक्ष प्रार्थना और पश्चाताप करे। इस पर कई लोकों ने मेरे पास पत्र भेजे हैं। उन में से एक प्रश्नकर्ता पूछता है— 'बिहार के भूकम्प के समय तो आपने बिना किसी भी हिचकिचाहट के यह कह दिया था कि सवर्ण हिन्दुओं के लिये अछूतपन के पाप का यह सही सही दण्ड है। परन्तु उस से भी अधिक विनाशकारी क्वेटा का भूकम्प किस पाप का फल है?'' लेखक को इस प्रकार के प्रश्न करने का अधिकार था। जो कुछ भी मैंने बिहार के लिये स्पष्ट शब्दों में

लिखा था, वही मैंने क्वेटा के सम्बन्ध मे भी स्पष्ट लिखा है। प्रार्थना के लिये कहा गया है वह आत्मा की सच्ची पुकार है। प्रार्थना मानसिक प्रायश्चित का प्रमाण है। उसमे उत्तम बनने और पवित्र होने की अभिलाषा पायी जाती है। कोई भी प्रार्थनापरायण मनुष्य दैवी विपत्तिओं को ईश्वरीय दण्ड मानेगा। यह दंड व्यक्तियों और राष्ट्रों के लिये एकसा है। सभी दण्ड लोकों को बराबर नहीं चौंकाते हैं। कुछ तो केवल व्यक्तियों पर ही प्रभाव डालते है; और कुछ राष्ट्रों के समूहों को साधारण हानि पहुचा जाते है क्वेटा संकट तो हमे त्रस्त कर देता है। दैनिक सामान्य कष्टों की ओर तो हमारा ध्यान ही नहीं पचहुँता। यदि भूकम्प प्रति दिन की घटना होती हमारा ध्यान उस ओर जाता ही नहीं। जो आतङ्क बिहार भूकम्प मे मच चुका था, वह इस क्वेटा भूकम्प मे नहीं मचा है।

किन्तु यह एक सामान्यअनुभव है कि प्रत्येक संकट बुद्धिमान मनुष्य को विनम्र बना देता है। वह इस बात का विचार करता है कि ईश्वर ने उसके पापों का दण्ड इस प्रकार दिया है, और इस लिये भविष्य मे उसको चाहिये कि वह अपने वर्ताव को सुधारे। उसके पापों ने उसको अत्यन्त निर्बल बना दिया है। वह अपनी निर्बलता मे सहायता प्राप्त करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है। इस प्रकार लाखों मनुष्यों ने व्यक्तिगत दुःखों के द्वारा आत्मोन्नति की है। राष्ट्रों तक ने ईश्वरीय सहायता पाने के लिये संकट आने पर ईश्वर से प्रार्थना की है। वे ईश्वर के सामने झुके है और उन्होंने नम्रता प्रार्थना और आत्म-शुद्धि के लिये विशेष दिन भी नियत किये हैं।

मैंने कोई नई या मौलिक वस्तु उपस्थित नहीं की है। आजकल लोकों मे दिखावटी अश्रद्धा अधिक है—ऐसे युग मे लोकों को पश्चा-ताप करने के लिये कहना एक दृढ़ता की बात है। किन्तु मैं अपनी दृढ़ता का दावा नहीं रखता। क्योंकि मेरी दुर्बलता या मेरे विचार तो सर्व

विदित है। जैसा कि मैं बिहार और बिहारियों को जानता हूँ उसी प्रकार यदि मैं कोटा की भी जानकारी रखता होता तो निःसन्देह मैं कोटा के पापों का भी निर्देश स्पष्ट रूप से कर देता, चाहे वे बिहारियों के अछूतपन से मिलते-जुलते न भी होते। परन्तु हम सभी—राजा और प्रजा—जानते हैं कि हमारे व्यक्तिगत और राष्ट्रिय कमरों [illegible] पाप कर्म हैं, जिनका उत्तर हमें ईश्वर के समक्ष देना है। इन सब के लिये पछतावा, प्रार्थना और विनय की ही आवश्यकता है। प्रार्थना हमारे लिये अकर्मण्य बनाने वाली भूमिका नहीं है। वह तो हमें निरन्तर निष्काम कर्म करने के लिये उत्तेजित करती है। आत्म-शुद्धि स्वार्थी आलसियों के लिये नहीं है वह दूसरों की भलाई करने वाले परिश्रमी लोगों के लिये ही है।

—हरिजन जून १५ १९३५ ई०

हम में आवश्यक अनुशासन आत्म-त्याग विनय और संकल्प की दृढता तब तक उत्पन्न नहीं हो सकती जब तक कि हम उपवास और प्रार्थना को न अपनायेंगे। ऐसा जब तक न कर सकेंगे, सच्ची उन्नति भी नहीं हो सकेगी।

—यंग इण्डिया मार्च २० १९३० ई०

मैं अपने मित्रों को केवल इस बात का विश्वास दिला सकता हूँ कि मैं सचाई की ओर आगे बढ़ने में किसी प्रकार की कसर नहीं रखता हूँ। विनय से भरा हुआ निरन्तर प्रयत्न और शान्त प्रार्थना ये दो ही सदा मेरे विश्वासपात्र साथी हैं। जिनको साथ रख कर उस कठिन कल्याण-मार्ग पर चलता हूँ जिस पर कि सभी जिज्ञासुओं को चलना ही चाहिये।

—यंग इण्डिया जून [illegible] १९२[illegible] ई०

एक बौद्ध से बात चीत

प्रार्थना का अर्थ

पिछले दिनों मे जब गांधी जी ऐबटाबाद पधारे थे, उस समय वे बहुत से कार्य-कलाप और दर्शनार्थिओं से बचे हुए होने के कारण बहुत कुछ सोच-विचार कर लिख सके थे। परन्तु वहां भी कुछ दर्शनार्थी उनके पास पहुँच ही गए। वे वर्तमान परिस्थिति और राजनीतिक विषयों पर चर्चा करने वाले नहीं थे। उस के प्रश्न अजीब ढग के थे और रूढियों के सबन्ध थे। इतिहास मे मिलता है कि इस प्रकार के प्रश्नों का उस प्रदेश मे प्राचीन काल मे बौद्ध-भिक्षुकों द्वारा निराकरण हुआ करता था। गांधीजी से एक मनुष्य मिलाः उसने कहा कि मैं बौद्ध हू। और उसने अपने से सम्बन्ध रखने वाले एक विषय पर चर्चा की। वह पुरा तत्व वेत्ता है और वह प्राचीन पद्धति के जीवन को बहुत पसन्द करते है और उसी सम्बन्ध के स्वप्न देखा करते हैं। उनका नाम डा० फेबरी हैं। वे हिन्दुस्तान मे बहुत वर्ष रहे है। प्रो० सिलवन लेवी के शिष्यों मे से हैं। श्री आरेल स्टीन जो कि एक प्रसिद्ध पुरातत्त्व-शास्त्री थे उनके आफिसर रह चुके है उन्होंने आर्कियोलोजिकल (पुरातत्व के) विभाग मे कई वर्ष सेवा की है। लाहौर के म्यूजियम को फिर से ठीक करने के कार्य मे उन्होंने सहायता पहुचाई है। उनकी देख-रेख मे कुछ अच्छे भवन भी बनाये गये है। कट्टर बौद्ध होने के कारण वे पक्के तार्किक है। वे हंगरी देश के रहने वाले हैं। कुछ दिन पूर्व गाधी जी से पत्र व्यवहार भी कर चुके थे। उन्होंने सहानु-भूति रूप से गांधीजी के साथ साथ उपवास भी किये थे। ऐबटाबाद मे केवल गांधी जी को मिलने के लिये ही वे आए थे।

वह प्रार्थना की शैली और विषय को विशेष रूप से जानना चाहते थे कि गांधीजी किस प्रकार की प्रार्थना करते है। क्या ईश्वर

का दिया हुआ मन प्रार्थना द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है ? क्या प्रार्थना के द्वारा कोई उसे जान भी सकता है।

गांधीजी ने कहा—जब मैं प्रार्थना करता हूँ तो मैं क्या करता हूँ—इस बात को ठीक ठीक प्रकट कर सकना कठिन है। परन्तु मुझे आपके प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करना चाहिये। ईश्वर प्रदत्त मन को पलटना असम्भव है, किन्तु वह ईश्वरत्व प्रत्येक मनुष्य मे और प्रत्येक पदार्थ मे है—चाहे वह सजीव हो या निर्जीव। प्रार्थना का यह उद्देश है कि मै उस ईश्वरपन को अपने मे जगा दू। अब मुझ मे वह मानसिक श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है, किन्तु उसका वास्तविक रूप नही। इस लिये जब मैं स्वराज या भारत की स्वतन्त्रता के लिये प्रार्थना करता हूँ तो मैं प्रार्थना करता हूँ या चाहता हू कि मुझ मे उस स्वराज को पाने के लिये पूर्ण योग्यता हो जाय या उसकी प्राप्ति मे मै अधिक से अधिक सहायक हो सकू। मुझे इस बात का भरोसा है कि प्रार्थना द्वारा से वह शक्ति पा सकता हू।

डा० फेबरी बोले—"तब आप उसको प्रार्थना नहीं कह सकते है। प्रार्थना का अर्थ तो है मांगना।

हॉ, नि सन्देह आप यह कह सकते है कि मै उसको अपने आप से, मेरी ऊची आत्मा से या अन्तरात्मा से जिसका कि मुझे अभी पूर्णतया ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है मागता हूँ। आप इस को ऐसे भी कह सकते है कि जो ईश्वरपन सारे संसार मे व्याप्त है उस से मिल जाने की निरन्तर अभिलाषा का नाम ही प्रार्थना है।

—:o:—

ध्यान अथवा याचना ?

"और क्या आप उसको जगाने के लिए पुराना ढंग स्वीकार करते हैं ?"

"हाँ मैं ऐसा ही करता हूँ। क्योंकि जीवन भर की आदत बनी ही रहती है. और मैं यह भी कहलाने को उद्यत हूँ कि मैं जिस बाह्य शक्ति की प्रार्थना करता हूँ मैं उस अनन्त का अंश हूँ और इसी प्रकार जो कुछ मैं अपने बाहर अनुभव करता हूँ वह भी उसका अत्यन्त छोटा सा अंश है। यद्यपि मैं आपके सम्मुख तर्कपूर्ण व्याख्या उपस्थित करता हूँ तोभी मुझे उस विश्वशक्ति के समक्ष अपनी स्थिति इतनी तुच्छ प्रतीत होती है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। जब भी मैं ऐसा कहने लगता हूँ कि मैं यह कार्य करता हूँ वह कार्य करता हूँ—तभी मुझे अपनी अयोग्यता और तुच्छता का भान होता है और ऐसा लगता है कि कोई दूसरी, बाह्यशक्ति मेरी सहायता करती है।"

'टाल्स्टाय का भी यही कहना है। सचमुच प्रार्थना पूर्ण ध्यान का और परमात्मतत्व में घुल-मिल जाने का ही नाम है। यद्यपि प्रार्थना करने वाला कभी कभी ऐसी स्थिति में जा पहुँचता है कि वह उस प्रकार याचना करने लगता है जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता से याचना करता।'

गाँधी जी ने उस बौद्ध डाक्टर को सचेत करते हुए कहा—"क्षमा कीजिए. मैं उस स्थिति में पहुँचा हुआ होने का दावा नहीं करता। यह कहना अधिक अच्छा होगा कि मैं उस ईश्वर की प्रार्थना करता हूँ जो कहीं बादलों में मौजूद है और जितना अधिक वह मुझ से दूर है उतना ही अधिक उससे मिलने की मैं उत्कण्ठा रखता हूँ और मैं अपने आपको विचारों द्वारा उसके सम्मुख उपस्थित करता हूँ। और विचार आप जानते ही हैं प्रकाश से भी तीव्र चाल रखता है। इस लिये उसके और मेरे

बीच का मार्ग चाहे कितना ही अनन्त दूरी का क्यों न हो, फिर भी अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। वह इतना दूर भी है, और पास भी है।"

मेरी प्रार्थना का स्तर भिन्न नहीं है।

डा० फेवरी बोले—"यह तो एक श्रद्धा की बात हुई परन्तु कुछ लोग जो मुझ जैसे हैं वे तर्क किये बिना मानते ही नहीं हैं। मेरे लिये तो जो कुछ बुद्ध ने सिखाया है उस से कोई भी वस्तु बढकर नहीं है और न बुद्ध से बढ कर कोई गुरु है। क्योंकि ससार के गुरुओं में केवल बुद्ध ने ही यह बात सिखाई है कि मैं जो कुछ कहूँ उसे आंख मीच कर ही मत मान लिया करो। ऐसा मत समझो कि एक एक पुस्तक आरम्भ से अन्त तक सर्वथा सही है। मेरे विचार मे ससार की एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है जिसको मैं सौलहों आने निर्भ्रान्त कह सकू, क्योंकि उन सभी को मनुष्यों ने बनाया है—चाहे वे मनुष्य कितने ही आत्म-ज्ञानी क्यों न हों। मै नहीं मानता कि ईश्वर मनुष्य की तरह उत्पन्न होता है—एक महाराजा की भाति आसन पर बैठ कर हमारी प्रार्थना सुनता है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आप की प्रार्थना एक भिन्न ढग पर है।"

विद्वानों के सम्मुख यह कहा जा सकता है कि वह भगवद्गीता और धम्मपद का भक्त है और केवल यही दो धार्मिक ग्रंथ वह अपने साथ रखा करता है। परन्तु उसका तर्क बहुत ही युक्ति पूर्ण था। उनमे भी गांधी जी ने उसको पकड ही लिया।

गाधीजी बोले—"मुझे आपको ध्यान दिलाना है कि जब आप यह कहते हैं कि मेरी प्रार्थना एक भिन्न स्तर पर है—तो आपका कथन अशत सच्चा है। मैंने तो आपको कहा था कि जो बौद्धिक विचार मैंने आपके समक्ष उपस्थित किये थे वे सदा ही मुझ में स्थिर नहीं रहते।

मुझ मे जो कुछ विद्यमान् है, वह है मेरी श्रद्धा और उसी के द्वारा मैं ईश्वरीय अदृश्य शक्ति मे लीन होजाता हूँ। और इसीलिये अधिक सच तो यह है कि ईश्वर मेरे लिये काम करता है—यह कहना चाहिये, अपेक्षा यह कहने के कि अमुक काम मैंने किया है। इस लिये बहुत से काम मेरे जीवन मे ऐसे हो चुके है, जिनके लिये मै बहुत ही उत्कण्ठा रखता था, किन्तु मैं स्वय उन्हें नहीं कर सकता था। और मैंने अपने साथियों को सदा ही यह कहा है कि यह मेरी प्रार्थना का फल ईश्वर ने दिया है। मैने ऐसा भी कभी नहीं कहा कि मैंने अपने बुद्धि-बल से अपने आप को आत्मतत्त्व मे लीन किया। सब से सरल और सही बात तो यह कहनी होगी कि ईश्वर ने मुझे मेरी कठिनाई मे सहायता की है।"

अकेले कर्म में कोई सामर्थ्य नहीं

डा० फेब्वरी बोले—"यह तो सब आप के कर्मों का फल है। ईश्वर न्याय करने वाला है—दया करने वाला नहीं। आप भले मनुष्य हैं और आपके साथ भली बातें होती है।

"डरने की कोई बात ही नहीं है। मै इतना भला नही हूँ कि जिसके कारण से ये कार्य हो जाय। यदि मैं कर्म के नियम पर ही बैठा रहूँ तो बड़ा भारी धोखा खाऊं। मेरे कर्म मुझे सहायता न करेंगे। यद्यपि मै कर्म के कठोर नियम को मानता हूँ, मैं इस प्रकार कई बातों के करने का प्रयत्न करता हूँ, मेरे जीवन का एक एक क्षण भारी प्रयत्न का है। जो अधिक कर्म के निर्माण का प्रयत्न कहा जा सकता है, जिसके द्वारा पुराने कर्म मिट कर नये कर्म का निर्माण होता है। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है कि मेरे पुराने कर्म अच्छे थे इसी से वर्तमान मे कर्म ठीक होते जा रहे हैं। ऐसे तो सभी पिछले कर्मों का फल शीघ्र ही समाप्त हो जायगा। और मुझे तो अपना भविष्य प्रार्थना के द्वारा ही

बनाता है। मैं आपको कहूँगा कि केवल कर्म में कोई शक्ति नहीं है। यदि मैं अपने आप को कहूँ कि इस दियासलाई को जलाओ फिर भी यदि बाह्य सहायता न मिले तो मैं यह काम नहीं कर सकूँगा। सलाई के रगड़ने के पूर्व मेरा हाथ सुन्न हो जाता है या मेरे पास केवल एक ही सलाई है, जिसे हवा का झोंका बुझा देता है। क्या यह एक आकस्मिक घटना या ईश्वर है या कोई दैवी ताकत है? सुनिए, मैं अपने पूर्वजों की या बच्चों की भाषा को काम में लूँगा। मैं एक बच्चे से बढ़कर नहीं हूँ। हम विद्वत्ता में ग्रंथों की बातें बना सकते हैं, परन्तु जब विपत्ति आ घेरती है, जब हमें संकटों का सामना करना पड़ता है, तब हम बच्चे बन जाते हैं, रोने लगते हैं, प्रार्थना करने लगते हैं और बुद्धि की उड़ान हमें संतोष नहीं दे सकती।"

क्या बुद्ध ने प्रार्थना नहीं की?

डा० फेबरी बोले—"मुझे विदित है कि बड़े बड़े मनुष्यों को अपने जीवन के निर्माण में ईश्वर पर विश्वास रखने से बड़ा सुख और सहायता मिली है। किन्तु कुछ ऐसे महात्मा भी हुए हैं, जिन्हें उसके बिना भी शान्ति मिली है। यह बात मुझे बौद्ध-धर्म ने सिखलाई है।"

गांधी जी बोले—"मगर बौद्ध-धर्म स्वयं ही एक लम्बी प्रार्थना है।"

डा० फेबरी आगे बोले—"बुद्ध ने प्रत्येक मनुष्य को यह कहा कि सभी अपने लिये मोक्ष की खोज करो। उसने कभी प्रार्थना नहीं की—उसने तो मनन किया।"

"कुछ भी नाम दीजिए, परन्तु है वही वस्तु। उनकी मूर्तियों को ही देखिये।"

"किन्तु वे मूर्तियां उसके जीवन का सच्चा स्वरूप नहीं है। मूर्ति-विशारदों का कहना है कि वे बाद की वस्तुएं हैं। वे उसकी मृत्यु के ४०० वर्ष बाद की बनी हुई हैं।"

तब गांधी जी ने ऐतिहासिक प्रमाण को छोड़ कर पूछा—"मुझे बुद्ध का इतिहास जैसा कि तुम जानते हो, बतलाओ। मैं सिद्ध कर दूंगा कि वह प्रार्थना करने वाला बुद्ध था। कोरा बुद्धिवाद मुझे संतोष नहीं दे सकता। मैंने पूरी और स्पष्ट परिभाषा तुम्हारे सामने नहीं रखी है। वैसे ही तुम भी अपने विचारों को ठीक ठीक नहीं समझा सकते हो। वर्णन करने के प्रयत्न की भी एक सीमा है। विश्लेषण उसमे टिक नहीं सकता और सिवाय नास्तिकता के दूसरा कोई सहारा ही नहीं रहता है।"

क्या पोप ने ऐसे ही लोगों के लिये ये विचार प्रकट किये हैं —

"नास्तिकों के लिये एक बड़ा भारी ज्ञान है, सदाचारीयों मे अभिमान की एक भारी निर्बलता है। वह बीच मे ही लटक रहा है; सोचता है कि काम करूं या विश्राम करूं, उसे सन्देह है कि मै देवता हूँ या राक्षस, वह सोचता है कि मै अपने मन पर अधिकार करूं या शरीर पर। जो उत्पन्न हुआ है वह तो मरेगा ही, जो तर्क करता है वह चूकेगा भी, सचाई का अखण्ड न्यायाधीश असंख्यों भूलों मे उलझ गया, यही संसार का बड़प्पन, लीला और माया है।

विनीत बनो

डा० फेबरी ने पूछा—"परन्तु जो भोग प्रार्थना नहीं कर सकते हैं उनके लिये क्या करना चाहिये ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया—"विनीत बनो। मुझे उनको कहने के लिये भी बहुत कुछ है। आप अपने काल्पनिक बुद्ध के द्वारा यथार्थ बुद्ध

को नीचे मत गिराओ। यदि उन में प्रार्थना करने का विनय नहीं होता तो वह करोडों हृदयों पर अपना अधिकार न तो कर सकता था और न उसे स्थिर रख सकता था—जो कि आज भी है। एक अत्यन्त ऊँची शक्ति अवश्य है जो बुद्धि से बढ़ कर है और जिसका प्रभुत्व हम पर और नास्तिकों पर भी है। उनका नास्तिकवाद और ज्ञान उनकी संकट की घडियों में किसी काम का नहीं रहता। उन्हें किसी बडी बाह्य शक्ति की आवश्यकता प्रतीत होती है जो उन्हें सहायता पहुँचा सके। और इस लिये यदि कोई मेरे सम्मुख ऐसा भारी प्रश्न उपस्थित करता है तो मैं उसे यही उत्तर देता हूँ कि जब तक तुम अत्यन्त नम्र और शून्य न बन जाओगे तुम्हें न तो ईश्वर का ही अर्थ समझ में आ सकेगा और न प्रार्थना का ही। आपको पूर्ण विनयी बन कर समझ लेना चाहिये कि मैं कितना ही बडा और बुद्धिमान् क्यों न हूँ, फिर भी इस बडे ब्रह्माण्ड में मैं एक चिनगारी भी नहीं हूँ। जीवन के विषय में केवल मानसिक विचार ही सब कुछ नहीं है। आध्यात्मिक चिन्तन बुद्धि को बढाता है और उसी के द्वारा शान्ति भी मिल सकती है। धनिकों को भी अपने जीवन में संकटमय घडियों में होकर निकलना पडता है, यद्यपि उनके पास तो वे सभी साधन है जिनको वे धन द्वारा प्राप्त कर सकते और जो प्रेम से पा भी जा सकते है। फिर भी अपने जीवन में कभी कभी वे अत्यन्त व्यग्र हो जाते है। ऐसी ही घडियों में हमें ईश्वर की झाकी—ईश्वर के स्वरूप का भान होता है, वही जीवन में पग पग पर हमें मार्ग बतलाता है। यही प्रार्थना है।"

तब डा० फेबरी ने पूछा—"क्या हम लोग जिसे एक सच्चा धार्मिक अनुभव मानते है और जो मानसिक विचार से भी अधिक दृढ़ होता है, उस से आपका अभिप्राय है? इस प्रकार का अनुभव मुझे अपने जीवन में दो बार हो चुका है, किन्तु उसके बाद फिर नहीं हुआ। परन्तु मुझे अब बुद्ध की दो-एक बातों से बडी शान्ति प्राप्त हो जाती है। गांधी जी

दुःख की जड है"; "भिक्षुको। स्मरण रखो प्रत्येक पदार्थ नश्वर है: इन पर विचार करते ही श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।"

गांधीजी फिर बोले—"बस, इसी का नाम तो प्रार्थना है"—जिसका प्रभाव पडे बिना नहीं रहता।

—हरिजन • अगस्त १६, १६३६ई०

भावशून्य प्रार्थना शब्द करते हुए पीतल अथवा बजती हुई घंटी के समान है। —यंग इण्डिया : सितम्बर २५, १६२४ ई०

प्रार्थना हो रही है तो वहाँ आलस्य टिक नहीं सकता है।

—यंग इंडिया : जनवरी ५,१६२१ ई०

मंत्र को उसकी महत्ता को पहचाने बिना जपते रहना मनुष्य को शोभा नहीं देता। —यंग इंडिया : अक्टूबर १३,१६२१ ई०

बिखरे हुए और तितर-बितर व्यक्तियों के समाज को जोडने के लिये, और एकरूप समाज का निर्माण करने मे जो काम प्रार्थना कर सकती है वह दूसरे किसी से नहीं हो सकता। वह हमे पवित्र बनाती है और हमे सच्ची शक्ति देती है वह शक्ति जो पवित्रता और ऊँचे विचारों से उत्पन्न होती है। —हरिजन : जुलाई २८,१६४० ई०

दक्षिणी अफ्रिका मे मैंने कई वर्षों तक अपने प्रयत्नों को केवल प्रतीक्षा करने और प्रार्थना करने मे ही लगाया और मुझे इस बात का अटल विश्वास है कि शान्त प्रार्थना का समय उस काम के लिये अत्यन्त

उपयोगी था। यह एक आधार भूत चट्टान है, जिस पर धीरे धीरे अपने कर्मों का भवन खड़ा किया जा सकता है।

—यंग इंडिया ' अगस्त २२, १९२९ ई०

धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा और प्रार्थना करने पर ही मुझे बड़े बड़े अवसर प्राप्त हुए हैं।

यदि शुद्ध और पवित्र हृदय से जपा जाय तो राम-नाम में आश्चर्य जनक शक्ति है। —हरिजन ' मई ४, १९३५ ई०

हृदय से की हुई प्रार्थना हमारे शरीर मे शक्ति-संचार करती है, हमे विनीत बनाती है और हमे आगे का मार्ग स्पष्टतया बतलाती है।

—हरिजन ' जून २२, १९३५ ई०

मुझे समाधिस्थ होने की शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। उसके प्राप्त हो जाने पर मनुष्य वाह्य विघ्न से नहीं गड़बड़ाता।

—हरिजन ' अप्रैल २२, १९३९ ई०

भाग तीसरा

अध्याय १

मूर्ति—पूजा

(बुत-परस्ती)

मै मूर्ति-पूजा मे अविश्वास नहीं रखता। मूर्ति मुझ मे श्रद्धा की भावना उत्पन्न नहीं करती। किन्तु मैं समझता हूँ कि मूर्ति-पूजा मनुष्य के स्वभाव का एक भाग है। हम स्वरूप (निशान) के पीछे पड़ते है। क्या कारण है कि एक मनुष्य अन्य स्थानों की अपेक्षा किसी गिरजाघर मे अधिक शान्त रहता है? मूर्तियाँ पूजा मे सहायता करती है। कोई भी हिन्दू मूर्ति को देवता नहीं मानता। मैं मूर्ति-पूजा को पाप नहीं मानता हूँ।

—यंग इंडिया सितम्बर २६,१९२० ई०

मूर्ति-पूजा जब किसी आदर्श को स्थिर करने मे सहायता देती है तो हिन्दू-धर्म मे उसे आदर मिलता है। किन्तु मूर्ति को ही जब लोक एक आदर्श मान बैठते तो वह एक पाप बन जाती।

—यंग इंडिया जून २१,१९२८ ई०

मै मूर्ति-पूजक और मूर्ति-अपूजक दोनों हूँ, किन्तु अपने विचार के अनुसार उन शब्दों के वास्तविक अर्थों मे। मूर्ति-पूजा के पीछे जो भावना है, उसका मैं मान करता हूँ। वह मनुष्य को ऊँचा उठाने मे एक महत्त्व का कार्य करती है। हमारे इस देश को जिसे सहस्रों मन्दिरों ने पवित्र बना रखा है, उन मन्दिरों की रक्षा करने के लिये मैं अपनी जान की बाजी लगा देने की शक्ति पाने के उत्सुक हूँ। मुसलमानों के

साथ जो मेरी मैत्री है, वह पहले से ही इस बात को मान कर है कि वे मेरी मूर्तियों और मेरे मन्दिरों को प्रतिष्ठित रखना हृदय से सहन करें। मैं मूर्ति भञ्जक इस अर्थ में हूँ कि मैं मूर्ति-पूजा के उस ओछेपन को तोड़ना चाहता हूँ जो अपनी कट्टरता में इस बात का समर्थक है कि बिना इसके ईश्वर-भक्ति का दूसरा कोई भी मार्ग हो नहीं सकता है। इस प्रकार की मूर्ति-पूजा तो बड़ी ही हानिकर होगी, क्योंकि ईश्वर के एक सुन्दर और व्यापक स्वरूप को एक पत्थर या सोने की मूर्ति तक ही सीमित कर के उसके बड़प्पन को ही गिरा देगी।

यंग इंडिया अगस्त २८ १९३२ ई०

सच्ची पूजा मूर्ति की पूजा में नहीं है बल्कि मूर्ति में रहने वाले ईश्वर की पूजा में है। —हरिजन फरवरी १६.१९३४ ई०

एक छोटा सा प्रश्न

प्रश्न—मैं एक हिन्दू विद्यार्थी हूँ। मैं एक मुसलमान का बड़ा मित्र रहा हूँ किन्तु मूर्ति-पूजा के प्रश्न पर हम में झगड़ा हो गया। मुझे मूर्ति-पूजा में शान्ति मिलती है किन्तु मैं अपने मुसलमान मित्र को इस सम्बन्ध में ठीक ठीक समझा नहीं सकता हूँ। क्या आप 'हरिजन' में मूर्ति-पूजा के विषय में कुछ विचार प्रकट करेंगे?

उत्तर—मैं आप दोनों हिन्दू और मुसलमान मित्र के साथ सहानुभूति रखता हूँ। मैं आपको सम्मति देता हूँ कि इस विषय पर मेरे 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित लेखों को पढ़िये, और यदि आपको उनसे सन्तोष हो जाय तो आप अपने मुसलमान मित्र को भी उन्हें पढ़ने के लिये दीजिए। यदि आपके मित्र के मन में आपके

लिये सच्चा प्रेम होगा तो वे अवश्य ही मूर्ति-पूजा के विरुद्ध जो दुर्भावना उनके मन मे उत्पन्न हो चुकी है, उसे दूर कर देंगे। वह मैत्री अधिक महत्त्व की नहीं है जो विचार और आचार की एकता को नष्ट करती है। मित्रों को एक दूसरे के रहन-सहन और विचारों का मान करना पडता है—चाहे वे विभिन्न क्यों न हों। नि सन्देह जहाँ मत-भेद प्रबल हो वहाँ यह बात नहीं टिक सकती। यह हो सकता है कि आपके मित्र आप से इस बात के लिये घृणा भी करने लग गये हों कि आप एक मूर्ति-पूजक है। पत्थर-पूजा बुरी वस्तु है किन्तु मूर्ति-पूजा नहीं। पत्थर-पूजक उस मूर्ति को ही सब कुछ मान लेता है, किन्तु एक मूर्ति-पूजक एक पत्थर मे भी ईश्वरत्व को देखता है, और इसी लिये वह एक पत्थर का आश्रय लेकर ईश्वरत्व से सम्बन्ध जोड़ता है। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि बनारस के विख्यात मन्दिर के अन्दर का पत्थर काशी-विश्वनाथ नहीं है परन्तु उसे इस बात का विश्वास है कि विश्व का स्वामी उस पत्थर मे अवश्य रहता है। इस प्रकार की कल्पना की दौड सह्य है। पुस्तकों की दुकान मे रखी हुई हर एक 'गीता' की पुस्तक मे वह श्रद्धा नहीं है जो कि मुझे अपने पास की प्रति मे है। तर्क शास्त्र बतलायगा कि श्रद्धा न इस पुस्तक मे और न उसमे उपस्थित है। श्रद्धा तो मेरे विचारों मे है परन्तु वह कल्पना आश्चर्य जनक परिणाम दिखती है। वह तो मनुष्यों के जीवन ही परिवर्तित कर देती है। मेरा तो ऐसा विचार है कि चाहे हम मानें या मानें किन्तु वास्तव मे हम सब के सब मूर्ति की पूजा करने वाले है या बुत-परस्त है, यदि जो भेद मैंने बतलाया है वह मान्य नहीं है तो। एक पुस्तक, एक मकान, एक चित्र और एक खुदी हुई वस्तु अवश्य ऐसी मूर्तियाँ है जिनमे ईश्वर रहता है—किन्तु वे स्वयं ईश्वर नहीं हैं। जो ऐसा कहते है वे भूल करते है।

—हरिजनः मार्च ९,१९४० ई०

मन्दिर

गिरजाघरों, मन्दिरों और मस्जिदों के नाम पर कितना दम्भ और पाखण्ड फैला हुआ है। उनके द्वार निर्धनों के लिये बन्द हैं। यह सब ईश्वर और उसके पूजन की हँसी या ठट्टा करना है। जब एक ओर हम यह देखते हैं कि धर्म के नाम पर झगड़े होकर ईश्वर का नाम बदनाम हो रहा है, दूसरी ओर सारे नीले आकाश के नीचे अति विशाल लम्बा-चौड़ा प्रार्थना का मन्दिर दिखाई देता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर की सच्ची पूजा करने की स्वतन्त्रता है। —यंग इण्डिया मार्च ८ १९२८ ई०

हमारे मन्दिर तड़क-भड़क के लिये नहीं बनाए गए हैं। वे तो विनय और सरलता उत्पन्न करने के लिये हैं, जो कि भक्ति करने वालों के लिये आवश्यक गुण हैं।

मैं मन्दिरों का होना अन्ध विश्वास या पाप नहीं मानता हूँ। किसी न किसी रूप में सार्वजनिक प्रार्थना और सार्वजनिक पूजा का स्थान होना मनुष्य की आवश्यकता प्रतीत होती है। मन्दिरों में मूर्तियों का रखना या न रखना यह किसी समाज की इच्छा और रुचि पर आश्रित है। मैं यह नहीं मानता कि हिन्दू या रोमन कैथलिक पूजा-घरों में मूर्तियाँ हैं, इसीलिये वे बुरे हैं या पाखण्ड से भरे हुए हैं, और यह भी नहीं कि मसजिदों या प्रोटेस्टेन्ट गिरजाघरों में मूर्तियाँ नहीं रहती हैं इसीलिये वे अच्छे और पाखण्ड-रहित हैं। एक चिह्न जैसे क्रॉस को ही लीजिये या किसी ग्रन्थ को लीजिए वह आसानी से मूर्ति की भावना उत्पन्न कर सकता है और इसीलिये पाखण्ड-रूप बन सकता है। और बाल-कृष्ण या कुमारी मेरी की मूर्तियों का पूजन भी अच्छा और पाखण्ड-हीन हो सकता है। यह तो पुजारी के हृदय की भावना पर अवलम्बित है। —यंग इण्डिया [illegible]

कटु अनुभवों ने मुझे सिखाया है कि सभी मन्दिर ईश्वर के घर नहीं है। वे शैतान के घर भी हो सकते है। ये पूजा के स्थान वहा तक व्यर्थ हैं जहा तक कि उनकी देख-रेख करने वाले ईश्वर के सच्चे भक्त नहीं हैं। मन्दिर, मसजिद और गिरजाघर तो ठीक वैसे ही है, जैसे कि मनुष्य उन्हे बनाते हैं।

—यग इंडिया : मई १९२७ ई०

मुझे एक जफना हिन्दू का पत्र मिला है। वह बतलाता है कि यहां कुछ ऐसे मन्दिर है, जहा कुछ अवसरों पर बुरे चाल-चलन की स्त्रिया नाचा करती है, यदि यह सूचना सच है, तो मुझे यह कहना पडेगा कि आप लोग ईश्वर के मन्दिर को व्यभिचार का अड्डा बनाए हुए है।

किसी मन्दिर को पूजा-घर, ईश्वर का घर बनाने के लिये कुछ विशेष नियमों से बधा हुआ रहना पडेगा। एक वेश्या भी पूजा-घर मे जाने का उतना ही अधिकार रखती है जितना कि एक महात्मा। परन्तु उस अधिकार की मांग वह उसी दशा मे कर सकती है जब कि वह उसमें जाकर अपने आप को पवित्र बनाना चाहती हो। परन्तु यदि मन्दिरों के स्वामी वेश्याओं को धर्म आड मे या ईश्वर की पूजा की झांकी की आड़ मे मन्दिरों मे बुलाते है तो वे देव-घरों को वेश्यालय बनाते हैं। चाहे कितना भी बडा मनुष्य आकर ऐसे बुरे चाल-चलन वाली स्त्रियों को नाचने या और किसी काम के लिये तुम्हारे मन्दिरों मे प्रवेश करने के लिये समर्थन करे, तो उसका कहना मत मानो, और जो मैंने सम्मति दी है उस पर डटे रहो। यदि तुम भले हिन्दू बनना चाहते हो, यदि तुम ईश्वर की पूजा करना चाहते हो तो तुम अपने सभी मन्दिरो के द्वारों को इन अछूत कहलाने वाले मनुष्यों के लिये खोल दो। ईश्वर को तो सभी सच्चे भक्त एक समान हैं। वह तो छूत और अछूत कहलाने वाले सभी

भक्तों को एक दृष्टि से देखता है और सभी की पूजा को स्वीकार करता है, यदि वह पूजा शुद्ध हृदय से की गई हो।

—यंग इण्डिया दिसम्बर २५, १९२७ ई०

कल्पना मे मेरा मन उस प्रागैतिहासिक युग की यात्रा पर गया जब कि लोगों ने ईश्वर का सदेश पत्थरों और धातुओं तक मे पहुँचाया था। मैंने अच्छी प्रकार देखा कि वह पुरोहित जो कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही हिन्दी मे समझा रहा था, मैं यह कहना नहीं चाहता था कि वे सभी ईश्वर के रूप है।

किन्तु मुझे उस भाव को समझाये बिना ही उसने मुझ मे ज्ञान उत्पन्न कर दिया कि ये सभी मन्दिर—उस छिपे हुए रहस्य और अनिर्वचनीय ईश्वर के है और हम जैसे तुच्छ लोक जो कि समुद्र की एक एक बूंद के बराबर भी नहीं है—बीच मे पुलों का काम करते है। हम सभी मनुष्य बडे बडे दार्शनिक या ज्ञानी नहीं है। हम संसार के लोग माया मे फसे हुए है और निराकार ईश्वर की कल्पना से हमे सतोष नहीं होता है। किसी न किसी प्रकार ऐसी वस्तु सम्मुख रखना चाहते है कि जिसे हम छू सकें, देख सकें और उसके सामने घुटने टेक सकें। चाहे वह एक पुस्तक हो, एक चूना और पत्थरों का भवन हो या अनगिनत मूर्तियों वाला भवन हो। किसी को एक पुस्तक से सतोष मिलता है तो किसी को एक खाली भवन से, तो किसी को ऐसे भवनों से कि जिनमे कई मूर्तियाँ खडी की हुई हों। तब मैं आप से कहूँगा कि आप इन मन्दिरों मे जाईये—इस लिये नहीं कि वे पाखडों के ठिकाने बने हुए है। यदि इनमे श्रद्धा पूर्वक तुम जाते रहोगे तो तुमको प्रतीत हो जायगा कि सदा ही वहा पहुँचने पर तुम अपने आपको थोडा-बहुत पवित्र बना कर लौटते हो। तुम मे धीरे धीरे ईश्वर पर श्रद्धा बढती ही जायेगी।

मन्दिरों में जाकर हम कुछ लाभ उठा सकेंगे या नहीं—यह तो सारी बात हमारी मानसिक स्थिति पर आश्रित है। हमको इन मन्दिरों में विनय और भक्ति की भावना को लेकर पहुँचना चाहिये। वे सभी ईश्वर के स्थान हैं। निःसन्देह ईश्वर प्रत्येक मनुष्य में रहता है, वह निश्चय ही अपनी सारी सृष्टि में विद्यमान है और प्रत्येक वस्तु जो कि इस पृथ्वी पर है, उसमें वह अपनी सत्ता रखता है। किन्तु हम भूल करने वाले नश्वर अल्पज्ञ इस बात को अनुभव नहीं करते कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है। हम मन्दिरों को एक विशेष महत्त्व देते हैं और सोचते हैं कि ईश्वर वहीं रहता है। और इसी लिये जब हम इन मन्दिरों को जायँ, तब हम अपने शरीर को, अपने मन को और अपने हृदय को पवित्र करके जाया करें, हम उनमें प्रविष्ट होते समय विनीत बन कर रहें और ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि आपके स्थानों में आने के फल-स्वरूप हम सभी मनुष्यों और स्त्रियों को पवित्रता प्राप्त हो। और यदि तुम एक वृद्ध मनुष्य की यह सम्मति मान लोगे, तो तुम्हारा यह शारीरिक छुटकारा जिसे कि तुम ने प्राप्त कर लिया है, आध्यात्मिक मुक्ति भी दिला सकेगा।

—हरिजन जनवरी १३,१९३७ ई०

समाप्त

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति.
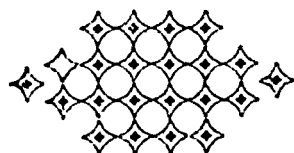
छपगई !   छपगई !!   छपगई !!!

"उत्तम जीवन"

(लेखक—मोहनदास कर्मचन्द गान्धी)

गान्धी जी के अक्षय शक्ति-भण्डार का रहस्य क्या है ?
क्या वस्तु उन्हें ७४ वर्ष की आयु मे २१ दिन का उप-
वास करने पर भी जीवित रखती है ?
उनकी प्रचण्ड और अनुपम इच्छा-शक्ति उनके घोरतम
शत्रुओं में भी ईर्ष्या उत्पन्न करती।
अपनी समस्त इन्द्रियों पर उनका संयम वर्तमान युग
की एक विशेष घटना है।

जो उनकी जीवन-प्रणाली से अनभिज्ञ है उनके लिए यह एक पहेली हो सकती है। ससार के प्रथम श्रेणी के कल्याणकारी होने के नाते वे किसी वस्तु को छिपा कर नहीं रखते और न केवल अपने परीक्षणों मे जनता के साथ भाग बँटाते है प्रत्युत इन्हीं मनुष्य जाति से निवेदन करते है कि वह उन से लाभ उठाय। हिमालय पर्वत पर पवित्र धवल हिम गिरती है जब कि भूमि के ऊपर धूल और मट्टी से व्याप्त रहते है। गान्धी जी का व्यक्तित्व इतना उच्च है जितना हिमालय पर्वत है और उनके मन में उतने ही निर्मल विचार ही प्रवेश पाते है। जब वे उन उच्च विचारों के माध्यम से रखते है तो वे उन छोटी धाराओं जैसे पावन होते है जिनसे गङ्गा का प्रवाह बनता है। गङ्गा की पूजा लखों मनुष्य करते है। गान्धी जी के लेखों ने ससार मे नव चेतन का सञ्चार किया है।

अपने जीवन-प्रभात में गान्धी जी ने भोगमय समय व्यतीत किया। परन्तु उन अन्धकारमय और अस्त व्यस्त दुराचार की परस्थितिओं में सहसाही सत्य की ज्योति जगमगा उठी कि उनका वह जीवन एक ज्ञान-हीन और अभिमानी पतङ्ग के मृत्यु-समय के नृत्य के समान था। जिसे वे प्रकाश माने हुए थे वह केवल एक चमक थी। विषय-भोग का जीवन यापन करते हुए वे एक मकडी के समान थे जो अपने मुंह से ही तार निकालकर जाला बनाती है जिस में अन्त में फंसकर दम घुट जाने से वह नष्ट होजाती है।

उन्हों ने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। उनकी ब्रह्मचर्य की कल्पना संकुचित नहीं है, केवल शरीर को ही वश में रखना पर्याप्त नहीं, परन्तु समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण प्रभुत्व और इस उज्वल आदर्श की प्राप्ति के लिए विचारों पर भी संयम अनिवार्य है। इस ऊंची पवित्रता के सिखाने के लिए उन्हें अदम्य इच्छा-शक्ति को साधना पड़ा। और उन्होंने यह सिद्धि किस प्रकार प्राप्त की यह इस पुस्तक का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। हममें से सभी आत्म-संयम की आवश्यकता और लाभों को जानते हैं परन्तु शारीरिक भोग की चञ्चल वासनाओं पर आत्मा (जीव) गिरजाता है। इस पुस्तक में ब्रह्मचर्य के सभी पक्षों पर गान्धी जी ने प्रकाश डालते हुए उनकी प्राप्तिका मार्ग बताया है।